अंधेरा मेरे हिस्से

सुदर्शन राघव

कृष्ण जनसेवी एण्ड को०
दाऊजी मन्दिर भवन, बीकानेर

अनुक्रम

भूमिका

श्रीमती सुदर्शन राघव के संकलन की कहानियों में भारतीय नारी के विभिन्न पक्षों पर बड़े ही संवेदनशील ढंग से प्रकाश डाला गया है। निम्न मध्यवर्गीय नारी के गार्हस्थिक जीवन से लेकर उच्च मध्यवर्गीय महिलाओं के मानसिक आरोह-अवरोहों का सही चित्र इन कहानियों में देखने को मिलता है। आज की कार्यशील नारी और परिवार की सीमित परिधि में ही सिमटी रहने वाली नारी की जिन मर्मान्तिक और विवशता-पूर्ण भावनाओं का अंकन लेखिका ने अपनी इस कृति में किया है वह इतना स्वाभाविक एवं तथ्यपरक है कि उसमें हम विभिन्न कुण्ठाओं से आक्रान्त आज के जीवन की अनेक विषमताओं, विसंगतियों और प्रतिक्रान्तियों का सफल प्रतिफलन देख सकते हैं। इस संकलन की 'फेरों का रिश्ता', 'सब चलता है', 'फिर वही शाम', 'टूटते सम्बन्ध : चीखता अस्तित्व', 'ये आकृतियां : ये मंजर', 'वह लौट आई', 'पैंवन्द' तथा 'उधार की कोख' आदि कई कहानियां ऐसी हैं जिनमें आधुनिक समाज में प्रचलित नारी-सम्बन्धी विभिन्न मान्यताओं और अनुभूतियों का यथातथ्य चित्र हमारे समक्ष पूर्णतः साकार हो जाता है।

इन कहानियों के बहुआयामी व्यापक परिवेश में फैली हुई 'जसमीत', 'चिनकी', 'काजल', 'लेडी डाक्टर रचना', 'गायत्री' तथा 'मणि' जैसी अनेक विपन्न तथा उपेक्षित नारियों के जीवन की गाथाएं आज के स्वार्थ-लोलुप और आत्म-केन्द्रित मानव का सही रूप प्रस्तुत कर रही हैं। इनके माध्यम से लेखिका ने अपने सुदीर्घ अनुभवों और कार्य-व्यापारों का जो सफल निष्कर्ष प्रस्तुत किया है उसके पीछे उसकी गहन संवेदनशीलता और मर्मान्वेषी दृष्टि का बहुत बड़ा योगदान है। इस संकलन की 'और फरिश्ता मर गया' शीर्षक अकेली कहानी ही ऐसी है जिसके नायक 'अमरबाबू' का चरित्र आज के आपाधापी और स्वार्थ-

लिप्सा वाले वातावरण में हमें एक सर्वथा विशिष्ट प्रेरणा प्रदान करने वाला है। जो व्यक्ति रात-दिन दूसरों का उपकार करने और हित-चिन्तन मे संलग्न रहता है वह इस संसार से अन्त मे कैसा 'गुमनाम' चला जाता है, यह घटना हमारी आँखें खोलने वाली है। आज जब लोग किसी का जरा-सा भी काम करने के उपरान्त उसके प्रतिदान में अपने अनवरत गुण-गान की कामना करते हैं तब 'अमर बाबू' के ये शब्द उनके लिए उचित दिशाबोध कराने वाले सिद्ध हो सकते हैं, "मेरा नाम अमर है। मैं जाति-पाँति में विश्वास नही करता, इसलिए नाम के साथ जाति लगाना कोई जरूरी नही। मैं जानता हूं कि मैं एक इन्सान हूं और सब इन्सानों की जाति एक ही होती है और सबका आदि और अन्त एक-सा है। फिर भला यह अलग-अलग बिल्ले लगाए फिरना क्या आवश्यक है? रही धर्म की बात, सो सभी धर्मों में अच्छाई भी है और बुराई भी। मैं हमेशा अच्छाई सोचने का कायल हूं।" आज हमारे समाज मे अमर बाबू जैसे व्यक्तियों की महती आवश्यकता है। समाज-सुधार की आड़ मे लोग किस प्रकार मनुष्य-मनुष्य के बीच विषमता फैला रहे हैं और उनसे समाज का वातावरण किस प्रकार विषाक्त हो रहा है, यह चिन्तनीय है।

उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर भी आज हमारे देश के अनेक नवयुवक नौकरी के अभाव में अपने जीवन से निराश होकर समाज के प्रति एक सर्वथा नकारात्मक रुख अपना लेते हैं। ऐसी परिस्थिति मे इस संकलन की 'झुकी हुई छत' शीर्षक कहानी के एक पात्र रफीक की भांति कुछ ऐसे भी मानव होते हैं जो अपने विवेक तथा धैर्य को न खोकर समाज को नई प्रेरणा देने वाले सिद्ध होते हैं। रफीक ने जीवन से सर्वथा निराश हुए अपने मित्र रवि को जिन शब्दों मे उसके कर्तव्य का उद्बोधन कराया है वे आज के कुहासा-भरे वातावरण में सारी युवा-पीढी के लिए 'प्रकाश-किरण' सिद्ध हो सकते हैं। रफीक के इन शब्दो में आज के अभावग्रस्त अनेक परिवारों के वातावरण की झांकी देखी जा सकती है, "रवि यार, एक बात तो बता! पढ-लिखकर तू यों नासमझों वाले रास्ते पर क्यों भटकने लगा है? तूने कभी सोचा है अपने मां-बाप के बारे में? कभी सोचा है उस नौजवान बहन के बारे मे, जिसके हाथ बड़ी बे-सब्री से सुहाग की मेहंदी लगने का इन्तजार कर रहे हैं। उन

नन्हे-नन्हे भाई-बहनों के बारे में कुछ सोचा है, जो घर के तनावपूर्ण असह्य वातावरण में, अगली सुबह की इन्तज़ार मे, पलकों पर आंसुओं को सजाए, नींद के आगोश में भूखे ही सो जाते हैं।" रफीक के इन शब्दों में अकेले रवि के ही परिवार का चित्रण नहीं है; प्रत्युत इसमे हम आज के अनेक अभावग्रस्त प्राणियों के पारिवारिक परिवेश का वास्तविक रूप देख सकते है।

लेखिका की संवेदनशीलता का सबसे उदात्त एवं अवदात रूप तो उन कहानियों में अत्यन्त सजीवता से उभरकर हमारे समक्ष आया है जिनमें उसने नारी-जीवन की विभिन्न विसंगतियों, आशाओं-आकांक्षाओं तथा अनुभूतियों का यथातथ्य अंकन किया है। इस संकलन की 'फिर वही शाम' शीर्षक कहानी में युवक आकाश अपनी मा के जीवन की पीड़ा, कसक तथा कराह पर किस प्रकार विचार करता है, और कैसे वह अपने पथ भ्रष्ट पिता के उद्धार के लिए एक वेश्या के घर जाकर उसे अपने पिता की ओर से विमुख रहने की प्रेरणा देता है और जिसके फल-स्वरूप उसका दिग्भ्रमित पिता फिर अपने पारिवारिक परिवेश मे सिमट जाता है, यह अद्भुत परिकल्पना है। उसने 'कजली' नामक वेश्या से जो शब्द कहे थे उनमे उसका हृदय किस प्रकार परिवर्तित हुआ और कैसे उसने आकाश के पिता को अपने यहां आने से रोका, यह भी लेखिका की अद्भुत कल्पना है। आकाश के इन शब्दों से आज की युवा पीढ़ी सर्वथा नई प्रेरणा ग्रहण कर सकती है, "क्या तुम चाहती हो तुम्हारे धन्धे की वजह से एक औरत तिल-तिल कर जलती रहे? तुम भी एक औरत हो। औरत होकर औरत का दर्द नही जानती। बड़े शर्म की बात है! तुम अपनी बच्ची को भी यह सब सिखा रही हो। तुम्हें देखकर ही तो तुम्हारी लड़की सीख पाएगी। एक तुम हो, और एक हमारी मां है, जो इतना सब झेलते हुए भी अपनी जबान नही खोलती तथा पति के कुकर्मों पर पर्दा डालती रहती है। क्या तुम्हारे सीने मे मां का दिल नही? मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हू काजल बाई! यह सब छोड़ दो और अपनी बच्ची का जीवन बनाओ।" आकाश के इन शब्दों से कजली के मन तथा मस्तिष्क पर कैसा प्रभाव हुआ होगा इसका ज्वलन्त प्रमाण यही है कि इस घटना के बाद उसके पिता समय पर घर आने लगे थे और अपने कमरे में बन्द होकर पुस्तकें पढ़ते रहते थे।

काजल के द्वारा उनसे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने के परिणामस्वरूप ही आकाश के पिता के जीवन-क्रम में यह क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ था। काजल ने भी अपने धन्धे को सर्वथा वन्द कर दिया, किन्तु बाद में आकाश से कहे हुए उसके ये शब्द आज की सामाजिक व्यवस्था का सही चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं, "धन्धा तो क्या बन्द हुआ है, ढंग बदल गये हैं। बड़े-बड़े होटलों में लड़कियां सप्लाई हो रही हैं। नाम बदला है। कुछ तो कहते हैं, मुआ याद ही नहीं आता, हां याद आया, कालगर्ल।" और यह विधि की कैसी विडम्बना, कि कजली की लड़की 'बेला' को जब समाज के किसी वर्ग ने भी 'गृहिणी' के रूप में अंगीकार करने की उदारता नहीं दिखाई तो उसे भी 'कालगर्ल' का धन्धा अपनाना पड़ा।

इस संकलन की 'टूटते सम्बन्ध : चीखता अस्तित्व' कहानी के मि० बत्रा, डाक्टर बत्रा, यशपाल एवं रचना जैसे आज के कुण्ठापूर्ण वातावरण की ही देन हैं। ऐसे अनेक पात्र तथा उतार-चढ़ाव हमारे जीवन में आते हैं, जिनका अंकन इन कहानियों में प्रचुरता तथा उन्मुक्तता से हुआ है। आज की कार्यशील तथा आधुनिक शिक्षा-दीक्षा के वातावरण में पली नारी अपने जीवन को किस-किस प्रकार के उतार-चढ़ावों में व्यतीत करने को विवश हो जाती है, इसका सही-सही जायजा आप इन कहानियों के माध्यम से ले सकते हैं।

श्रीमती राघव में जीवन की बहुआयामी अनुभूतियों और वितृष्णाओं के अंकन की जो अद्‌भुत क्षमता है उसका ही प्रतिफलन पाठकों को इस संकलन की कहानियों में दृष्टिगत होगा। अपने विषय-वैविध्य, गहनतम अनुभूति-प्रावीण्य और उत्कृष्टतम वर्णन-सामर्थ्य के कारण इन कहानियों में प्रेषणीयता का जो अद्‌भुत निखार परिलक्षित होता है उसे हम लेखिका की सफलता का चरम विन्दु कह सकते हैं। आज जब हिन्दी कविता की भांति कहानी भी अनेक नारों और विधाओं में विभाजित हो गई है तब श्रीमती राघव की ये कहानियां निश्चय ही साहित्य को सर्वथा नई दिशा देंगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। अपनी प्रेषणीयता और सोद्देश्यता से परिपूर्ण पद्धति के कारण इस संकलन की सभी कहानियां पठनीय एवं मननीय हैं। मैं लेखिका की इस सफलता के लिए बधाई देता हुआ उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं।

अजय निवास, दिलशाद कालोनी —क्षेमचन्द्र 'सुमन'
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

मेरी अपनी बात

अपनी कहानियों का यह पहला संकलन पाठकों के हाथों मे सौंपते हुए मुझे बेहद खुशी हो रही है। खुशी इसलिए कि ये मुझसे छूट रही हैं और एक विशाल पाठक वर्ग से जुड़ने को उद्यत हैं। खुशी इसलिए कि जहां से इनका ताना-बाना बुना है, वहीं ये अपनी इस निर्मित के बाद पहुंच रही हैं। खुशी इसलिए भी कि ये पढ़ी जाएंगी। इन पर सवाल खड़े होंगे, पाठकों की बहुमूल्य प्रतिक्रियाएं सामने आएंगी।

लिखने को मैंने ये कहानियां लिखी अवश्य हैं, पर इनसे हटकर जब अपनी औकात पर गौर करती हूं तो भरोसा नहीं होता कि ये मैंने लिखी हैं। यह मेरी अपनी हकीकत है। महत्ता जताने को नहीं लिख रही।

वैसे घर में रहते हुए वर्षों से अपने इर्द-गिर्द मैं कई-कई आवाजें सुनती रही हूं। अकेले में या भरे हुए परिवार के बीच में न जाने कैसे-कैसे पात्रों को मैंने अपने भीतर पीडा बिखेरते हुए देखा है। दिन-उजाले अपने चारों तरफ मैंने सघन अंधकार महसूस किया है और उस काले घुप्प अंधेरे मे पहले कभी न देखे हुए पात्रों की धुंधली आकृतियों को अपनी तमाम रंग-रेखाओं के साथ रोशनी फैलाते देखा है। मेरी कहानियों के अंधेरे आंचल मे अंधेरी हवेलियां भी है, झोंपड़पट्टियां भी, अस्पतालों के वार्ड भी और स्कूल-कालेजों के अपने अंधेरे भी।

ख्याली जिंदगी जीना मैंने नही सीखा। समाज के विविध वर्गों की नारियां और उनके सारे सामाजिक संदर्भ—उनका निश्छल उल्लास,उनका निरीह भोलापन, उनकी तेजस्विता, चालाकिया, प्रवंचनाए और उनके प्रति रचे जाने वाले षडयंत्रों के उलझे-पुलझे धागों को मैंने बहुत करीब से देखा है। यह उन्हीं की खासियत थी कि उन्होंने मुझे लिखने को

कलम थमा दी। इस प्रकार कहानी दर कहानी सृजन की पीड़ा का एहसास कराया है उन्होंने। हर बार लगा है कि वह अंधेरा सिर्फ उन्हीं के हिस्से नहीं, मेरे हिस्से भी है।

यह जानते हुए भी कि अंधेरा जीने की चीज नहीं, मैं अब उससे भयभीत नहीं। उसकी तासीर को पहचान लिया है मैंने।

बहरहाल तो इतना ही।

हां, मेरे रचना-कर्म में एक उजले हाथ का साथ बराबर रहा है। वे मेरे जीवन-सहचर हैं श्री पद्मसिंह राघव। अब जबकि ये कहानियां छप रही हैं उनका आभार कैसे न मानूं! हर कहानी की रचना के साथ वे प्रथम श्रोता के रूप में ही नहीं संरक्षक के रूप में भी रहे हैं।

दूसरा आभार हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार आचार्य क्षेमचंद्र 'सुमन' का, जिन्होंने नितांत अपरिचित होते हुए भी मेरी ये कहानिया पढ़ी और पुस्तक की भूमिका लिखने का श्रम किया। भूमिका भी बराये नाम नहीं, समीक्षात्मक, एक-एक घटना, पात्र और विचार पर टिप्पणी करते हुए।

इस पुस्तक के प्रकाशक श्री कृष्ण जनसेवी भी आभार के अधिकारी है—मुझसे मेरी रचनाओं को अलगाने वाले पहले शख्स।

—सुदर्शन राघव

१

मिटते अक्स : उभरते चेहरे

वह जल्दी-जल्दी सीढियां चढ़कर अपने कमरे में आई तब तक उसकी सांस धौंकनी की तरह फूल आई थी। बिना कपड़े बदले ही वह धड़ाम से कटे वृक्ष की तरह अपने विस्तर पर आ गिरी। उसने अपने शरीर को एकदम ढीला छोड़ दिया था। यही तो एक जगह थी, जहां दुनिया-भर के शोर से मुंह मोड़कर चैन से रह पाती थी वह। अपने कमरे में आकर उसे बड़ा सकून मिलता था। वह जानती थी, अभी मा की आवाज आएगी, "आ गई बिटिया," या फिर हो सकता है, वह अन्दर चली आए और मीठी-सी झिड़की दे दे, "ऐसे क्या लेटी है? उठ न! कपड़े बदलकर मुंह धो ले, मैं चाय बना रही हूं।" या फिर पूछेगी, "आज की डाक देखी तूने? आज तो कई चिट्ठियां आई हैं। जरा पढ़ियो तो इनमें क्या लिखा है?"

जैसा उसने सोचा था, वही हुआ; मां आकर बोली, "अरे नीलू, ऐसे क्या पडी है? कपड़े भी नही बदले। देख, कलफ लगी साडी मे सलवटें पड़ जाएंगी, तो फिर प्रेस का झंझट करना पड़ेगा।"

उसके दिल मे आया, कह दे, "मां, साड़ी की सलवटों का तुम्हें इतना ख्याल है, पर दिल पर पड़ी सलवटों का क्या होगा?" पर वह खामोश रही। कोई उत्तर न पाकर मां नजदीक आ गयी और चिन्ता से झट माथे पर हाथ लगाती हुई बोली, "तबीयत तो ठीक है न बेटी?"

वह स्नेहमयी मां का मुह ताकती रही। इन दिनों चिन्ता से मुंह कितना सूख गया है। आंखें गड्ढे में धंस गई हैं। चारो ओर स्याही-सी पुत गई है। खुद कितना सह रही है मां। अन्दर ही अन्दर घुलती जा रही है। इस सबके पीछे गुनहगार वह स्वयं को पाती है। वह भी क्या करे?

उसके बस की बात थोड़े ही है। अगर कुछ खरीदकर लाना होता तो बात दूसरी थी, मेहनत-मशक्कत करके जुटा लाती, पर ये तो शादी··· ब्याह···?

वह स्वयं भी कौन-सी सुखी है। एक-एक करके साथ की सारी लड़कियों के हाथों में मेहंदी रच गई। एक वही बची है। अब तो किसी के शादी-ब्याह मे शामिल होने का साहस भी उसमे न रहा था। जहां जाती वहीं परिचित लोगों के एक ही प्रश्न से सामना होता था। और वह निरुत्तर हो जाती थी। भला क्या जवाब दे? अभी कुछ दिन पूर्व ही तो सरोज की शादी में गई थी। मिलते ही सभी सहेलियां तपाक से बोली थीं, "अरे नीलू! मिठाई खाती ही रहेगी या खिलाएगी भी? कहो भई, कब तक का इरादा है, यूं ही फिरने का?" वह कटकर रह गई थी। उसने निश्चय किया, भविष्य में वह किसी भी पार्टी मे शामिल न होगी। जब-तब उसे इस प्रकार की स्थिति का सामना करना पड़ता था। मन के दर्द को सीने में दबाए वह मुस्करा-भर देती, इसके सिवा और चारा भी क्या था?

ऐसी बात न थी कि उसकी शादी की चिन्ता किसी ने समय रहते न की हो, पर सब किस्मत का चक्कर है। यूं तो पिताजी ने सोलहवां लगते ही शादी की बात हरिप्रसाद जी के सुपुत्र से पक्की कर दी थी। और उस कच्ची उम्र में ही उस सूरत को उसने अपने मानस पट पर उतार लिया था। हर समय उसी के सपने देखने लगी थी पर विधि के आगे किसका वस चलता है? विधाता ने अपने क्रूर हाथों से पिता का साया सिर से क्या उठाया कि सब कुछ बदल गया। मित्र के मरते ही हरिप्रसाद जी का दिमाग बदल गया। विचारों मे परिवर्तन आया और उन्होंने खेद प्रकट करते हुए सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और अपनी असमर्थता पर क्षमा मांगकर किनारा कर गये। मानस पटल पर अंकित प्रतिमा ठेस लगते ही चकनाचूर हो गई।

मां के सामने उसके विवाह की समस्या बड़े विकट रूप से आ खड़ी हुई। निकट सम्बन्धी कोई इस जंजाल मे पड़ने को तैयार न था। मां निराश हो चली। मामा ने हिम्मत बढाई और इस कार्य में पूरा सहयोग

देने का आश्वासन देकर वे रवाना हो गये।

मां फिर एक नई आशा के सहारे जीवन का सफर तय करने लगी। एक दिन मामा का पत्र आया। साथ में तस्वीर भी थी। बड़ी तारीफो के पुल बांधे थे उन्होंने। उसके पटल पर पहले का अंकित अक्स लगभग मिट चुका था, अब उसकी कल्पनाओं मे नया चेहरा उभर आया था।

मा खुश थी। भगवान की मनौतियां मान रही थी। वह कल्पना के घोड़ों पर दौड़ते हुए जीवन की राहों पर चलने लगी। पर यहा भी कल्पना जितनी सुखद थी, यथार्थ उतना ही कड़ुवा था।

एक दिन मामा का पत्र आया। उन लोगो ने रिश्ते से इन्कार कर दिया है। कारण कि लड़की के भाई नहीं है। भला उनसे कोई पूछे कि रिश्ता लड़की से करना था या भाई से? पर शायद लड़की हो तो उसके भाई का होना भी बडा महत्त्व रखता है। बात जहां की तहां समाप्त हो गई। मां फिर रोज-रोज मामाजी के पास पत्र लिखवाती। शुरू-शुरू मे तो उसने विरोध किया, क्योंकि उसकी मा लिखना-पढना जानती न थी, उसे लिखते शर्म महसूस होती थी, पर जब मा ने दूसरे लोगो से लिखवाने की धमकी दी तो उसे मजबूरन लिखना पड़ा। वह मां की ओर से पत्रों के उत्तर लिखती।

एक दिन मामा की चिट्ठी आई कि वह किसी लड़के को लेकर उसे देखने आ रहे हैं। यद्यपि यह नुमायशबाजी उसे पसन्द न थी, फिर भी मां की खुशी के लिये वह सब कुछ कर रही थी। कभी-कभी वह आत्म-ग्लानि से भर उठती कि उसके कारण सबको कितनी परेशानी उठानी पड़ती है।

वह दिन भी आया जब एक परिवार उसको परखने के लिये आ धमका। वह नीलामी की वस्तु की तरह बन-संवरकर बैठी थी। पता चला कि वह सबके मन को भा गई है। जाते वक्त वे लोग थोड़ा-बहुत सगुन भी कर गये। बात एक तरह से पक्की ही हो गई थी। मां ने बडे शौक से लड़के की तस्वीर एक खूबसूरत-से फ्रेम मे जड़वाकर टेबल पर सजा दी थी। मां में एक नई स्फूर्ति का संचार हो गया था। काफी अरसे से मुरझाये चेहरे पर रौनक आ गई थी। समय बीतने लगा।

एक दिन ड्यूटी से लौटी तो मां ने उसके नाम का नीला लिफाफा, उसे थमाते हुए कहा, "देख तो बेटा यह किसका है ?"

पत्र खोला तो धक्क से रह गई थी। उसी लड़के का पत्र था। लिखा था, "एक शका का समाधान चाहता हूं। शादी के बाद मां, किसके पास रहेगी ? मेरे परिवार वाले यह कभी पसन्द नही करेंगे कि उनके बेटे के सिर पर ससुराल वालों का बोझ आ पड़े।" वह गुस्से से पागल हो गई। उसका मन चीखने को हुआ, पर उसने अपने-आप पर काबू पा लिया, क्योंकि वह मां को यह सब बताकर दुखी नही करना चाहती थी। पर मां तो कब से खड़ी उसके चेहरे के भावों को पढ़ रही थी। बोल ही पड़ी, "क्या बात है बेटी ? कोई ऐसा-वैसा समाचार तो नही ?"

"अरे नही मां, तुम्हें तो हमेशा उल्टी ही सूझती है। यूं ही कुशलता का पत्र लिखा है।"

"अरे बेटी, दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंककर पीता है वाली बात है। भगवान करे किसी तरह काम बन जावे तो गंगा नहा लू।" वह और अधिक न सुन सकी, उठकर बाथरूम मे चली गई।

ऐसी बात भला छुपाये से कब तक छुपती। एक दिन अचानक मामाजी आ गये और उनकी जुबानी मा को सब पता चल गया। मा ने कहा भी, "एक बार मुझे उनसे मिला दो। मैं उनकी गलतफहमी दूर कर दूं," पर मामाजी ने जवाब दिया, "रहने दो बहन, मैं सब कह चुका। यह तो शायद न करने का बहाना मात्र था।"

अपने अतीत में उलझी वह यह भी भूल गई कि उसकी मां उसके लिये चाय लिये खड़ी है।

"अरी नीलू, क्या बात है ? यूं क्या घूर-घूरकर देख रही है ?"

"कुछ नही मां, यूं ही जरा जी अच्छा नही, कुछ देर सो लूं तो हल्का हो जायेगा।"

"अरे चाय पीकर सो जाना, कौन मना करे हैं ? और हा, देख तो यह लिफाफा किसका है ? तेरे मामा का लगे है ?"

पत्र खोलकर देखती है, मामा का पत्र है, लिखा है, 'एक तस्वीर भेज रहा हूं, लड़का योग्य है, खानदान भी अच्छा है। अगर भगवान ने

चाहा तो काम बन जावेगा, लड़की राज करेगी।'

वह तस्वीर देखने लगी। एक नया चेहरा आंखों के आगे समा गया। उसे लगा, सभी चेहरे सामने रखे फ्रेम पर बारी-बारी से उभरते हैं और उसे मुंह चिढ़ाते हुए-से गायब हो जाते हैं। उसके मुह से एक दबी हुई चीख निकल गई। मां उसका मुंह ताकती रही। कुछ भी समझ नहीं पायी।

ये आकृतियां : ये मंजर

रेलवे वर्कशाप का सायरन ठीक ग्यारह बजे बजता है। ठीक इसी समय पार्क से होकर आती हुई दो मैली-कुचैली मानव आकृतियां सहज ही उभर आती हैं और प्रायः रेंगती-सी टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर चलती हुई आगे निकल जाती है। लगभग आधे घंटे बाद बड़ी मस्ती के आलम में झूमती-झामती जिस राह से प्रकट हुई थी उसी ओर लौट आती हैं।

मैं समझ गई कि वे कहां जाते हैं और क्यों जाते हैं? स्कूल के ठीक पीछे की ओर गंदी बस्ती मे, सुना है, कुछ लोग देसी ठर्रे का धन्धा करते हैं। इन गरीब मजदूरों की वजह से इस धन्धे मे चार चांद लग गये हैं। उन लोगो का उधर से गुजरना कोई एक दिन की बात थोड़े ही है। यह तो रोज का नियम है, जिसका पालन वे बड़ी ईमानदारी से करते आ रहे हैं। कड़ी धूप, लू, आंधी भी तो उनके मार्ग मे बाधक सिद्ध नही हुए।

कई वर्षों से उन्हें देखती आ रही हूं। कभी-कभी वे दो से तीन हो जाते हैं। उनके तार-तार कपड़े, जिन पर बेतहासा मैल ने अपना साम्राज्य स्थापित कर रखा था, कड़े हुए बाल और गन्दगी, लगता है उन्हे प्रिय थी या फिर सुरा सुन्दरी ने उन्हे सिवा अपने, किसी बारे में सोचने लायक रखा ही न था।

जब भी वे वहां से निकलते निगाह स्वतः ही एकबारगी उनकी ओर उठ जाती और एक नजर मे उनके व्यक्तित्व का निरीक्षण कर लौट आती। यद्यपि मैं उनसे परिचित न थी, फिर भी पता नही क्यों उनके बारे में कुछ जानने को उत्सुक रहती। अगर कभी भूल से वे लोग देर-सवेर निकलते और कुछ दिन मैं उन लोगों को न देख पाती तो मेरे

मन में एक प्रश्न-सा उठता, क्या हुआ होगा उन लोगों को ? शायद आज पीने-पिलाने लायक कमा न पाये होंगे, या फिर भगवान से उन्हें सुबुद्धि दी हो कि अपनी कमाई का पैसा ले जाकर अपनी पत्नी को देना।

पर नही, अगले दिन फिर फटे-पुराने, मैले-कुचैले कपड़ो में लिपटी जिंदा लाशें फिर प्रकट हो उठतीं। हाथों मे कोई ठूंगा होता। अवश्य ही उसमें नमकीन होगी, जिसे चबाने के साथ-साथ वे लोग पीते भी होंगे।

कुछ दिनों के लिए स्कूल में छुट्टियां हुईं तो बाहर जाने का प्रोग्राम बना डाला। दिल्ली वाली ट्रेन पकड़ने के लिए कुली की मदद बिना बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ता है। या तो रिजरवेशन या फिर कुली। कुलियों की आदत होती है कि ये चलती ट्रेन मे चढ़कर पहले से धक्का-मुक्की करके उचित स्थान का प्रबन्ध कर देते हैं। मुसाफिर खुश होकर एक-आधा रुपया हथेली पर बख्शीश स्वरूप टिका देते हैं और कुली खुश।

इत्तिफाक से स्टेशन पर जिस कुली से मदद लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह जानी-पहचानी सूरत का था। शायद वह भी हमें पहचान गया था। उसने भी झट से हाथ जोड़कर कहा, "जय राम जी की मास्टरनी साब।"

मुझे याद आया, यह वही व्यक्ति था, जो प्रतिदिन नशे के भयंकर रोग से पीड़ित उधर से गुजरता था। खैर, उसने हमें अच्छी तरह बिठा दिया। मेरे पति ने मेहनताने के बावजूद एक रुपया और उसकी हथेली पर टिका दिया। वह खीसें निपोरता हुआ सलाम ठोककर चलता बना।

मैंने रोष प्रकट करते हुए कहा, "आपने नाहक ही उसे अतिरिक्त पैसा दिया।"

वे हंसकर टाल गये, "अरे भई, कोई फर्क नही पड़ता। बेचारा गरीब जान पड़ता है।"

मैं जानती थी, उसका सारा पैसा नशे मे उड जायेगा। मेरी इच्छा उनसे साफ-साफ बतला देने की हुई, पर समय और अवसर दोनों ही

प्रतिकूल लगे, सो खामोश रह गई। उस दिन गाड़ी लेट थी। बड़ी बोरियत लग रही थी, कि न जाने भीड़ मे से वही व्यक्ति फिर कब प्रकट हो आया। उसके हाथ में सुराही थी। देखते ही हमें अपनी गलती का अहसास हुआ। पानी से भरी हुई सुराही हम प्लेटफार्म की बेंच पर ही छोड आये थे। हम लोगों ने मुस्कराकर उसका धन्यवाद किया।

वह न जाने क्यू कुछ पल खड़ा रहा। इस पर मेरे पति ने यूं ही समय व्यतीत करने के लिहाज से पूछ लिया, "कहो मियां, कहा रहते हो?"

इस पर उसने सब कुछ बता दिया कि वह यही स्टेशन के पीछे बनी झुग्गियों मे रहता है। पांच बच्चे हैं छोटे-छोटे। बीबी है और साथ ही उसकी अन्धी मा भी रहती है। किसी तरह गुजर हो जाती है, साब। गरीब की तो जिन्दगी ही बेकार है।

बातें सुनकर मुझे पहले तो रहम आया फिर उसके रोज के कारनामे, जो मैं ग्राउण्ड मे रागी क्लास मे बैठी देखती थी, याद आए। गुस्सा भी आया। पर एक व्यंग्यपूर्ण मुस्कान अचानक ही मेरे अधरों पर फैल गई। सीटी बजी और गाडी रवाना हो गई।

छुट्टियों के बाद स्कूल फिर से लगने लगा। फिर सब उसी तरह चलने लगा। इधर रेलवे वर्कशाप का सायरन बजता और उधर दो मैली-कुचैली आकृतिया बाग के कोने से निकलकर, टेढे-मेढे रास्तो से होती हुई, पिछवाड़े की गंदी बस्ती मे विलीन हो जाती। पर अब कुछ अन्तर आ गया था। वह यह कि स्कूल के पास से गुजरते हुए उसकी आंखें बरबस ही मैदान मे लगी मेरी कक्षा की ओर उठ जाती और वह बेखटके 'मास्टरनी साब जय राम जी की" कहता हुआ हाथ जोडकर आगे निकल जाता। मुझे बड़ा अटपटा लगने लगा। अब मैं अपने-आप को उस स्थिति से बचाने के उपाय सोचने लगी। यद्यपि इसमें कोई बुराई न थी, फिर भी एक शराबी से बात करना मेरी शान के खिलाफ था।

मैं जानती थी वह आधा-पौन घटे के बाद इसी राह से झूमता-झामता निकलेगा। उस वक्त वह सेन्सलेस होगा। न मालूम उस वक्त

क्या बोल जाये। मैंने स्वयं टलने में ही खैर समझी और अपनी कक्षा को थोड़ा मेहन्दी के पौधों की ओट में लगाना आरम्भ कर दिया।

वह व्यक्ति मेरे दिमाग पर इतना अधिक छा गया कि मैं जब भी कभी एकाकी होती, उसके परिवार की एक बड़ी दयनीय-सी तस्वीर मेरे जेहन में अंकित हो उठती। नंग-धड़ंग, दुबले-पतले बच्चे, रोटी के लिए बिलखते बच्चे, बीमार बच्चे, अन्धी मां, मैले-कुचैले, फटे कपड़ों में कंकाल हो आई पत्नी, निरन्तर अभाव, रोना, पीटना, सुबकना और सिसकियां, फिर वही नशे में धुत दरिन्दे का प्रवेश, मनमाना और वहशियाना व्यवहार···

···नशा उतरने पर अफसोस जाहिर करना और आगे भला आदमी बनने की कसमें खाना। परिवार के सदस्यों को नई आशा के सहारे जीने के लिए छोड़कर फिर एक नये दिन की शुरुआत करना। यूं तो उसके परिवार वाले भी जान चुके होंगे कि उसके कसमे-वादे सब बना-बटी है, फिर भी इन्सान का मन कुछ इसी तरह का बना है कि वह फिर से नई आशाओं को संजोकर जिन्दगी के दिन जीता रहता है। शायद परिस्थितियां जीने के लिए मजबूर कर देती हैं।

"राज्य मे पूर्णतया नशाबन्दी लागू हो गई है," यह समाचार पाकर मुझे बेहद खुशी हुई। मेरे सामने एकबारगी एक सुन्दर-सी तस्वीर तैर गई। जो बच्चे कल तक नंग-धडंग पड़े भूख से जूझते थे, उनके शरीरों पर पूरा कपड़ा, पेट-भर खाना और एक आशा-भरी मुस्कान। मेरा मन रोमांचित हो उठा। चलो अच्छा ही हुआ, कितने परिवार बरबादी के चंगुल से बच निकलेंगे, कितने उजड़े घर बस जायेंगे।

दो दिन से वे लोग वहां से नहीं गुजरे तो मैंने अपनी कक्षा पूर्ववत् उसी स्थान पर लगानी आरम्भ कर दी।

सायरन की आवाज ने बरबस ही फिर मुझे कुछ याद दिला दिया। पर मेरी हैरानी का ठिकाना न रहा, जब मैंने फिर से किन्हीं दो मैली-कुचैली आकृतियों को पार्क के एक कोने से मुड़कर फिर से टेढ़े-मेढ़े रास्ते से होकर पीछे की बनी गन्दी बस्ती में प्रवेश करते देखा। इस बार

उनके हाथों में खाने की सामग्री न थी। नशाबन्दी के बावजूद लोग अपना धन्धा चोरी-छुपे पूरे वेग से चला रहे थे। विक्रेता और उपभोक्ता किसी भी कीमत पर अपने सम्बन्धों को बिगाड़कर हानि उठाना नही चाहते थे। एक को धन की चिन्ता थी, दूसरे को सरूर की।

मेरा मन कराह उठा। यही स्थिति रही तो उन अनचाही औलादों का क्या होगा जो बरबस ही मोरी के कीड़ों की तरह बिलबिलाकर मर जायेंगे या फिर भूख और अन्याय के साथ जूझते-जूझते विरोधी हो जायेंगे और सहज ही देश मे दरिन्दों की संख्या मे वृद्धि होती रहेगी। मैंने फैसला कर लिया कि मैं अवश्य ही नशाबन्दी कानून को सार्थक बनाने मे न्यायविदो की मदद करूंगी।

जब पति से इस बारे मे सलाह की तो उन्होने इस बारे मे थोड़ी आना-कानी की। बोले, "देखो निधि, दुनिया बहुत बड़ी है, किस-किस का ध्यान रखोगी? किस-किस की शिकायत करोगी? हां, अगर तुम्हारी ही तरह देश के सभी लोग इस मामले में युद्ध स्तर पर कदम उठाये तो कुछ बन सकता है। वैसे हमें उन लोगों को शिकायत के पूर्व एक बार चेतावनी दे देनी चाहिए।"

अगले दिन शाम को हम लोग घूमते-घूमते स्टेशन के पीछे बनी झुग्गियों की ओर निकल गये। दैवयोग से वह कुली हमे वहीं एक झुग्गी के आगे, एक टूटी-सी खाट पर बैठा बीड़ी फूंकता दिखाई दे गया। देखते ही झट से उठ खड़ा हुआ। आश्चर्यचकित हो देखने लगा। फिर जैसे सम्भलकर बोला, "जय राम जी की बाबू जी, आज इधर कैसे आना हुआ साब?"

यू ही बाबा, इधर से जा रहे थे, तुम दिखाई दे गये। कहो कैसा चल रहा है?"

"ठीक ही चल रहा है, साब। पर यह महंगाई दम तोड़ देगी। किता ई मगज मारो भूख तो मिटे ही कोनी।" उसका यह कहना था कि एक दुबली-पतली काली औरत सामने आकर बोली, "बाबू जी, भूख काहे मिटेगी, कमाई तो सारी दारू में फूंक दे सै। तन के कपड़े अर पेट की रोटी बारे कौन सोचैं।"

"अरे चुप रह वेवकूफ। मास्टरनी जी आयी हैं। थोड़ी लाज-सरम कोनी राखै। लागी है चवर-चवर करन।"

मामला बिगड़ता देख हमने उसे समझाया कि वह अब पीना बन्द कर दे, क्योंकि उसका यह पीना उसके लिए खतरे से खाली नहीं। कोई भी व्यक्ति पीने और पिलाने वाले के खिलाफ शिकायत कर सकता है। क्यों अपना घर तबाह करते हो ? खुद की सेहत खराब करोगे सो तो है ही, बीवी-बच्चों की जिन्दगी मिट्टी में मिला दोगे। आते-आते मेरे पति उसे यह धमकी देना भी न भूले कि अगर तुम अपनी हरकतों से बाज न आये तो मैं तुम्हारी शिकायत...।

वह डर गया और हाथ जोड़कर भविष्य में न पीने की कसमें खाने लगा। वैसे भी ग्रामीण भोले लोग होते हैं, झट असर हो जाता है।

एक दिन छुट्टी के बाद कुछ सामान खरीदने के लिए सीधे ही बाजार की ओर निकल गई। अपनी ही विचारधारा में खोई-खोई मैं जा रही थी कि पीछे से किसी नारीकण्ठ की आवाज सुनकर ठिठक गई। देखा तो झट पहचान गई। वह उस कुली की पत्नी थी जिसके घर की ओर कुछ दिन पूर्व हम गये थे।

"नमस्ते, बैण जी साहब।"

"ओह ! कहो कैसे है तुम्हारा मरद ? पीता-पिलाता तो नहीं ?"

"नई, बैण जी अब तो बच्चा वास्ते नाज-पात अर कपड़ा ल्यादे सै।" और उसने खुशी से अपनी सस्ती गुलाबी धोती की ओर इशारा किया, "देखो न ! या भी उसने ल्याके दी सै।" मुझे उसकी स्थिति जानकर संतुष्टि हुई। यह सोचकर और भी खुशी हुई कि अब धीरे-धीरे नशाई लोग रास्ते पर आ जायेंगे।

एक दिन सवेरे-सवेरे किसी ने दरवाजा खटखटाया। मैं हैरान ! कौन हो सकता है ? इतने सवेरे तो बाई भी बरतन मलने नहीं आती, फिर कौन हो सकता है ? उठकर बाहर आई तो दंग रह गई। सामने कुली की पत्नी खड़ी थी। उसका हाल बेहाल था। बाल बिखरे हुए, मुख सूजा सूजा। जगह-जगह कपड़ों की चिंदियां उड़ गई थीं। मुझे अपनी आंखों पर एकबारगी विश्वास न हुआ। वह सिसकते हुए मेरे

पैरों पर गिर पड़ी।

आहट पाकर मेरे पति भी बाहर निकल आए। एक ही नजर में सब भांप गये और बोले, "क्या बात है, निधि? इसे कहो भीतर आकर बात करे। यूं सुबह-सुबह घर के सामने मेला लगाने से कोई लाभ नहीं।"

वह अन्दर आ गई और उसने बताया, इधर कुछ दिन से उसका आदमी फिर दारू पीने लगा है। पता नहीं कहां से दारू मिल जाती है। घर में बैठे-बैठे खूब पीता है और विरोध करने पर उस पर पिल पड़ता है। आज रात तो उसने खूब छककर पी और उसने व उसके साथियों ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया। विरोध करने पर उसकी खूब मरम्मत कर दी। यहां तक कि उसने अन्धी मां को भी धकेल दिया। वह गिरी तो फिर न उठी। सदा के लिए ठण्डी हो गई।

अभी सुबह का नशा टूटा तो वह भाग निकला और जाते-जाते यह धमकी दे गया कि तुम्हें देख लूगा। मैं मूर्तिवत् उसकी बातें सुनती रही। मेरी रगों मे मानो खून जम गया हो। मैं जड़ हुई जा रही थी।

कुछ क्षण के लिए पति कमरे मे गए और लौट आए। उनके हाथ मे पचास का एक नोट था। उन्होंने उस नोट को उस स्त्री की ओर बढाते हुए कहा, "ये लो, अपनी सास का शव ठिकाने लगाओ। डरने की कोई बात नहीं। अगर कोई परेशानी हो तो तुम्हें सीधे पुलिस में सूचना देनी चाहिए। जहां-तहां जाने से कोई लाभ नहीं।"

वह अवाक् उनका मुंह ताकती रही। फिर नजरें झुकाए धीरे-धीरे घर से बाहर हो गई। उसके जाते ही मेरे पति ने दरवाजा बन्द कर दिया।

मैं हतप्रभ-सी उन्हें देखती रही। मुह से बोल ही न फूट रहे थे। आखिर हिम्मत कर इतना ही कहा, "यह आपने क्या किया?"

"शुक्र करो, पचास रुपये मे पीछा छूटा, वरना झुग्गी-झोपड़ी में रहने वालों के चक्कर मे हमें कचहरियों के चक्कर लगाने पड़ सकते हैं।"

मैं निरुत्तर हो गई, पर एक ही प्रश्न दिमाग मे चक्कर काटता

रहता है, क्या नशे से उपजा यह दरिन्दा अपने वहशीपन से कभी छुटकारा पा सकेगा ?

स्कूल लग रहा है। कक्षा में लड़कियों को पढा रही हूं। लगता है, दो मैली-कुचैली आकृतियां झूमती-झामती चली आ रही हैं, सामने से। उनके पीछे दो-दो, चार-चार के काफिले हैं। जैसे मार्चपास्ट कर रहे हों और मैं कक्षा में नहीं, सलामी गारद के मंच पर हूं। ये काली आकृतियां···ये झूमती जिन्दा लाशें···ये औरतों की हड्डियां तोड़ते वहशी···ये टूटी बोतलों पर खून का नाच करते उन्मत्त···ये बिलखते बच्चे···और···और ये जहरीली शराब पीकर अस्पतालों में दम तोड़ते लोग···यह शोरगुल···यह रोना-पीटना···ये बेवक्त मौतें···बन्द करो ये झांकियां···मुझे नहीं देखनी ये आकृतियां···ये मंजर।

परिवर्तन

"मे आई कम इन ?"

"ओ यस ! कम इन ।" इतना कहने के साथ ही मिसेज विडवालकर, जो कि छात्रों को ब्लैकबोर्ड पर कुछ लिखकर दे रही थी, एकदम घूम पड़ी ।

"नमस्कार, दीदी ।"

"नमस्कार···नमस्कार । कहो भई आज किधर से रास्ता भूल गये ? पढाई कैसे चल रही है, तुम्हारी ?"

"जी, आपकी दया से बिलकुल ठीक चल रहा है, मैं जरा एक काम से···।"

"अच्छा, मैं जरा बच्चों को···।" घड़ी की ओर निगाह डाली । "बस पांच मिनट शेष हैं इस पीरियड में । तुम जरा लायब्रेरी मे चलकर बैठो, मैं अभी आती हूं ।"

"जी, मैं जरा जल्दी मे···।"

"हां-हा, अभी पाच मिनट में आई, नेक्स्ट पीरियड वैकेण्ट है ।" और वे बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए एकदम बोर्ड की ओर घूम पड़ी और छात्रों को समझाने लगीं ।

बेल होते ही वे पुस्तकालय की ओर लपकी और नवीन को लेकर आफिस में आ गई ।

"हां भई, अब कहो, कैसे आने का कष्ट किया तुमने ?"

"जी, वो कुछ प्रोग्राम के बारे मे कहने आया था । ऐसा है कि विवेक नाट्यशाला वालों की ओर से एक ड्रामा खेला जा रहा है । आठ तारीख रात को साढ़े आठ पर शुरू होगा, आप भी आइयेगा ।" और

उसने अपने बैग में से एक रसीद बुक निकाली।

"ये पांच-पांच रुपये के टिकट हैं!"

"लेकिन नाट्यशाला वाले तो…।"

"हां, दीदी, आप ठीक कह रही हैं। लेकिन इस पैसे से साहित्यकार मयंक का इलाज…।"

"क्यों, क्या हुआ उन्हें?"

"वाह…आपको मालूम नहीं। मयंक जी लगभग एक माह से हास्पिटल में भर्ती हैं और उनकी हालत चिन्ताजनक है। उन्हें टी.बी. की शिकायत है।"

"हूं, मगर साहित्यकारों को तो सरकार की…।"

"हां दीदी, सरकार की तरफ से मदद मिलती है। मगर मयंक जी ने मदद लेने से इन्कार कर दिया।"

"ऐसा क्यों?"

"यह तो उन्होंने बताया नहीं, मगर उनकी धर्मपत्नी जी ने एक बार कहा था कि हम लोग किसी की दया के पात्र…।"

"ओह! तब तो वे इस ड्रामे से हुई इनकम को भी…।"

"नहीं दीदी, ऐसी बात नहीं। हम लोगों ने इसके लिए राह निकाल ली है। यह ड्रामा जो हम लोग खेलने जा रहे हैं न! यह असल में उन्हीं का लिखा हुआ है और हमें उनकी परमीशन मिल गई है। एवज मे हमने उन्हें तीन हजार रुपया देना निश्चित किया है और इसमे उन्हें कोई आपत्ति नहीं।"

"यह तो बिजनेस है। क्यों?"

"जी।"

"हा। तो इसके लिए मुझे क्या करना होगा?"

"ये पांच-पांच रुपये के टिकिट है। आप इन्हें अपने स्टाफ में बिकवा दें।"

"देखो नवीन, मैं अपने स्टाफ मेम्बर्स से बात कर देखूगी, अगर कोई…।"

"दीदी, आप उनसे आग्रह तो कर ही सकती हैं। आप तो जानती

है, बात ही कुछ ऐसी है।"

"हां भई, आग्रह तो कर सकती हूं, लेकिन बाध्य नही कर सकती। क्यों ठीक है न ?"

"जी, सो तो है। अच्छा तो आपको टिकिट दे दू ?"

"नहीं, अभी रहने दो ! बाद में···।"

"फिर कब आऊं ?"

"एक-दो दिन में पता···नहीं-नही, तुम्हें स्वयं ही सूचित कर देंगे।"

"अच्छा तो अब मैं चलूं। नमस्कार।"

"नमस्कार।"

नवीन के चले जाने के बाद उन्होंने बेल बजाई। चपरासी रामदीन दौड़ता हुआ चला आया।

"हुक्म साब ?"

"एक गिलास पानी लाओ।"

"लाया साब !" और बूढा रामदीन अपनी झुकी हुई कमर को जरा तानने की कोशिश करता हुआ एक ओर खिसक गया।

पानी पीकर भी उनके दिल को ठंडक नही पहुंची। एक कशमकश-सी उनके दिल मे पैदा हो गई। वे कभी सोचती कि नवीन से टिकिट न लेकर अच्छा नही किया। वह कितनी आशा से आया था यहां। एक संस्था की प्रधान होकर पांच रुपये के लिए कन्नी काटना अच्छा नही रहा, यह तो सरासर अपनी प्रतिष्ठा को अपने हाथों ठेस पहुंचाना हुआ। मयंक जैसे साहित्य सेवी के हितार्थ उसे कुछ करना ही चाहिए था। वैसे तो उसकी रचनाएं सभी कितने चाव से पढ़ते है ! उसकी सराहना करते है। पर अब जब उस पर मुसीबत आई है···नहीं-नही, उसे टिकिट ले लेना चाहिए था। वह नवीन की नजरों में कितनी तुच्छ हो गई है ! एक नवीन है जो निर्विकार भाव से इतनी तेज गर्मी मे मारा-मारा फिर रहा है। अगर मेरी ही तरह पाच के नोट के कारण सब टिकिट खरीदने से इन्कार कर दें तो फिर तीन हजार रुपये···। पर नाटक देखकर रात को अकेले लौटने मे भी तो···?

जब जाना ही न था तो फिर टिकिट लेकर ही क्या करती, और वे

अपने मन को सांत्वना देती हुए उठ खड़ी हुईं। कन्धों को यूं झटका जैसे अपने मन में आए विचारों को झटककर साफ कर रही हों।

दिन-भर उनका मन काम में नहीं लगा। अन्तिम पीरियड में स्टाफ मीटिंग काल की गई। स्कूल-सम्बन्धी बातों के दौरान मिसेज विडवाल्कर ने साहित्यकार मयंक के ड्रामे की चर्चा छेड़ दी और कहा कि आप लोग अगर जाना चाहें तो टिकिट मंगवा लिए जायेंगे।

काफी देर तक खामोशी रही। अन्त में मिसेज विडवाल्कर ने ही चुप्पी को तोड़ा, "आप लोग सोच लीजिएगा, अगर प्रोग्राम बन जाए तो कल तक मुझे बता दीजिएगा, मैं टिकिटों का प्रबन्ध करवा दूंगी।"

सभी ने अपने सिरों को थोड़ा-सा हिलाते हुए मुस्कराकर मौन स्वीकृति दे दी और अपनी नजरें झुका ली। किन्तु चिकडोर के पास बैठा रामदीन, जो सारी बातें सुन रहा था, एकाएक उठ खड़ा हुआ और बोला, "बैण जी, टिकिट म्हारे वास्ते ईज मंगा दीजो।" और उसने अपनी जेब में से तह किया हुआ पुराना-सा नोट निकालकर मिसेज विडवाल्कर को थमा दिया।

"अरे रामू, तू बड़ा शौकीन है रे नाटक देखने का?"

"ना, बाईसा, नाटक-फाटक तो हूं कदै ईज नीं देखूं, पण...।"

"फिर ये टिकिट...।"

"ओ तो सा किणी बिपदा में पड़योड़े मिनख री मदद री अनूठो ढंग सा। टिगट लिया कोई फांसी नी हुवै कै पहुचणो ईज पड़ैलो।"

उस वृद्ध गरीब के विचारों को सुनकर सबकी आंखें शर्म से झुक गई और मस्तक श्रद्धा से! ओह, कितना दरिया दिल है यह बुड्ढा!

रामदीन की देखा-देखी सभी के मन में आया कि टिकिट के लिए कह दें, पर अब उन्हें कुछ शर्म-सी महसूस हो रही थी। मन ही मन कल के लिए कुछ निर्णय कर सब उठ खड़े हुए और अपने घर की राह ली।

मिसेज विडवाल्कर स्कूल से निकलकर सीधा हास्पिटल की राह चल दी। मयंक के काटेज का नम्बर उन्होंने बातों ही बातों में नवीन से पूछ लिया था। वे चली जा रही थीं। एक तूफान सा उनके दिलो-

दिमाग में चल रहा था। न जाने कब उनके कदम सहसा काटेज नम्बर चार के आगे आकर रुक गए।

आठ-दस साल का एक बच्चा बरामदे में खेल रहा था। मिसेज विडवाल्कर को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ। दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते की, फिर बोला "आप पापा से मिलने आई हैं?"

"हां-बेटे। पर तुम्हें कैसे मालूम?"

"रोज ही तो कितने लोग उन्हें देखते आते हैं न! इसलिए।"

"मैं भी उन्हीको देखने आई हूं। आओ अन्दर चलें।"

बेड पर मयंक जी को लेटे देखा। कितने बदल गए थे वे, दो साल पूर्व उन्हें किसी सभा में देखा था। पास ही उनकी धर्मपत्नी बैठी थी। बड़ी दुबली-पतली, तीखे नाक-नक्श और गौर वर्ण के कारण काफी आकर्षक लग रही थी। पर चिन्ता की वजह से काले धब्बे-से उभर आए थे उसकी आंखों के नीचे।

वह मिसेज विडवाल्कर को देखकर शीघ्र ही खड़ी हो गई और मुस्कराने की कोशिश करते हुए उनको नमस्ते का जवाब दिया।

मयंक ने भी अपने दुर्बल हाथों को जोड़ दिया। उन लोगों से बात-चीत करते हुए मिसेज विडवाल्कर को ऐसा लगा कि वे लोग कितने विशाल हृदय और स्वाभिमानी हैं। उनकी पत्नी के साहस एव दृढ़ता को देखकर बड़ी हैरानी हुई पर एक साहित्यकार की यह दशा देखकर मन बड़ा दुखी हुआ। कुछ देर इधर-उधर की बातें करके व कुशल-क्षेम पूछने के बाद जब मिसेज विडवाल्कर चलने को हुई तो बोली, "मेरे लायक कोई सेवा हो तो बताइए। अगर आप कुछ सेवा का मौका दें तो हमारे लिए सौभाग्य की बात होगी।"

"अरे बहिन जी, आपके मन मे हमारे लिए इतना स्नेह है, यह कोई कम खुशी की बात है? हमारे प्रति अपना स्नेह बनाए रखें, यही हमारे लिए सबसे बडी बात है।"

मयंक जी के स्नेह से परिपूर्ण शब्द श्रीमती विडवाल्कर के अन्तस् तक छू गए। मन भर आया। हाथ जोड़कर बाहर निकल आईं।

बाहर आकर फिर उनका सामना उसी बच्चे से हो गया। वह उन्हें

देखते ही कह उठा, "आण्टी, मेरे पापा अच्छे हो जायेंगे न ?" बालक की भोली सूरत देखकर मन भर आया। उसे अपने से चिपटाते हुए वे बोली, "हां-हां बेटा, तुम्हारे पापा अब जल्दी ही अच्छे हो जायेंगे।" और वे चल दी। उनके कदम अनायास ही नवीन के घर की ओर उठ गए।

दरवाजे पर दस्तक देने के बाद वे जरा देर रुकी। भीतर किसी के चलने की आहट हुई, शायद कोई आ रहा था। दरवाजा खोला एक वृद्धा ने।

"नमस्ते माजी।"

"आओ-आओ बेटी, किससे मिलना चाहती हो ?"

"मुझे नवीन से मिलना है। क्या वह घर पर नही है ?"

"नहीं बेटी।"

"अच्छा तो मैं···।"

"अरे नही बेटी। अभी तो आई हो, बैठो। अभी आता ही होगा वह।"

"·······"।

"आजकल वह बड़ा व्यस्त रहता है बेटी। सच कहूं, सुबह से भूखा है, अन्न का दाना···।"

"अभी कहां गया है ?"

"उसका परिचित कोई लेखक है। बेचारा बीमार है। उसकी मदद के लिए कोई नाटक-वाटक कर रहे हैं। टिकिट रखी है सो उसी को बेचने के चक्कर मे फिर रहा है। अच्छा है, अगर कुछ मेहनत करने से किसी का भला हो जावे। बेचारे की हालत खराब बतावें। घर में बच्चा है, जवान पत्नी है। पता नहीं भगवान को क्या···?" और उनकी आंखें भीग गईं।

कुछ देर बैठने के बाद मिसेज विडवाल्कर ने उठते हुए कहा, "अच्छा मांजी, मैं चलती हूं। उसे कहना मिसेज विडवाल्कर आई थी। कल स्कूल में मुझसे मिल ले।

"अच्छा बेटी, ठहरो मैं भी चलती हूं। एक कापी मैंने भी ली है उससे। मुहल्ले मे टिकटें बेच आऊंगी।" और वह लाठी के सहारे लंगड़ा-

लंगड़ाकर चलने लगी।

मिसेज विश्वालकर का दिल भर आया, उन्होंने झट उनके हाथों से टिकिटों की कापी छीन ली।

"लाओ मांजी, आप आराम करो, यह टिकटें मैं खरीद लेती हूं। आप कल नवीन को भेजकर पैसे मंगवा लें।"

"जीती रहो बेटी, भगवान तुम्हारा भला करें। मुसीबत मे किसी के काम आना सबसे बड़ा पुण्य है बेटी।" और उन्होंने अपना कांपता हाथ मिसेज विश्वालकर के सिर पर रख दिया।

मिसेज विश्वालकर उसके स्नेहिल हाथ के स्पर्श से गद्गद हो गई। हाथ मे थमी टिकिटों को देखकर वे सोचने लगी, यह मन भी कैसा बहुरूपिया है। झट गिरगिट की तरह रंग बदल लेता है। कभी पत्थर से भी कठोर तो कभी मोम से भी नर्म। कहां तो सुबह एक टिकिट के लिए झिझक रही थी और कहा पूरी बीस टिकटों की जिम्मेवारी ले ली।

अगले ही दिन स्कूल स्टाफ रूम में फिर सभा बुलाई गई और देखते ही देखते टिकटें बीस हाथों में बट गई। बूढ़ा रामदीन उन सबके हृदय परिवर्तन को देख रहा था। वह गद्गद हो उठा। उसकी आंखो से दो मोती लुढ़ककर झुर्रियों-भरे गालों मे विलीन हो गए।

उधार की कोख

इतनी लम्बी क्यू देखकर मणि के होश फाख्ता होने लगे। "लगता है आज फिर काम नहीं बनेगा।" कल भी यूं ही लौट गई थी वह, और परसों भी। "ओह, कितनी भीड़ जमा हो जाती है यहां।" मणि ने धीरे से बुदबुदाते हुए एक सरसरी नजर अपनी घड़ी पर डाली। पूरे १२ बजे थे। "सिर्फ एक घण्टा शेष है, हास्पिटल बन्द होने में। क्या एक घंटे में इतनी लम्बी क्यू···? नो-नो। इम्पासीबल! तब फिर कल। आज भी बगैर चेकअप कराये लौटा जाय? ऊंह, सरकार लाख प्रयत्न करे, चाहे परिवार नियोजन-सम्बन्धी कितनी ही योजनाएं बनायें, पर भानुमती के कुनबे की तरह बढ़ता ही जाता है यह सिलसिला।" क्यू में खड़ी, बढ़ा हुआ पेट लिये एक के बाद एक असंख्य औरतें, एकबारगी उसकी निगाह घूम गई। "ये लोग कैसे अनाड़ी हैं?" पर फिर अपने ही शब्दों पर शर्म आई। "हो सकता है इन सबका ही पहला या दूसरा हो।"

सामने एक सफेद फियेट गाड़ी आकर रुकी। उसमें से एक खूबसूरत छोटी-सी उम्र की महिला उतरी। उसके बढ़े हुए पेट को देखकर जाहिर था, वह भी औरों की तरह चेकअप के लिए आई थी।

देखते ही देखते, बिना किसी की पारी की परवाह किए आगन्तुका कन्सल्टिंग रूम में चली गई। अन्य महिलाओं में, जो वहां सुबह से खड़ी-खड़ी परेशान हो रही थीं, खुसर-पुसर होने लगी। मगर अगले ही क्षण पुनः खामोशी छा गई।

सहसा पर्दा उठा और वही महिला अपना रुमाल हिलाती हुई परेशान-सी बाहर निकल आई। शायद लाइट खराब हो जाने के कारण

अन्दर की गर्मी सह न पाई थी।

एक हल्की-सी मुस्कराहट फेंकते हुए आगन्तुका मणि के करीब आकर बैठ गई। बातों का सिलसिला चल पड़ा। पूछने पर मालूम हुआ शायरा उसका नाम है। नई कालोनी में कुन्दन मेन्शन में ऊपर फ्लोर पर रहती है।

"हम लोग भी वहीं नजदीक ही हैं।" इतना कहकर जैसे ही मणि उठने को हुई उसने बड़े सभ्य ढग से कहा, "अरे आप चेकअप नहीं करायेंगी?"

"अजी हो लिया चेकअप। मुझे लगता है समय बीतता जा रहा है और क्यू की लम्बाई भी निरन्तर बढती जा रही। पिछले तीन दिन से यही हाल है। चलो फिर सही। फिर मुन्ना भी परेशान हो रहा होगा।"

"आपका यह सेकिण्ड इशू है?"

"जी हां, सही फरमाया आपने। सेकिण्ड और साथ में लास्ट भी। आपका तो फर्स्ट चान्स लगता है, क्यों?"

"ओह नो, सेकिण्ड चान्स है। आप बैठिए न। आप बातें बहुत मोहक ढंग से करती हैं, *रियली यू आर वेरी अट्रैक्टिव।*"

"धन्यवाद, मगर अब बैठे रहने में कुछ लाभ नजर नही आ रहा।"

"नहीं जी, अभी जरा एक बजने दो, फिर मेरे साथ-साथ आपका भी चेकअप हो जाएगा। अरे साब, फुल पेमेण्ट किया हुआ है। बुलाना तो घर पर ही था मगर ईवनिंग में हमारा प्रोगाम एक डिनर पार्टी में जाने का है।"

"ओ···तब ठीक है। लगता है आपके शौहर काफी बडे ओहदे पर हैं।"

"हां, हैं तो, आप कभी आइएगा।" और उसने तत्काल अपने प्यारे सफेद पर्स में से एक कार्ड निकालकर दिया। तभी एक नाटे और भारी व्यक्ति ने आकर सूचित किया कि डा० पद्मावती ने आपको बुलाया है। मणि के चेहरे पर खुशी की लालिमा छा गई, मानो उसकी लाटरी खुल गई हो।

रात-भर पानी बरसा मगर हवा बन्द थी। उमस के मारे निचले माले मे बैठी मणि का दम घुटने लगा। अचानक उसे शायरा का ध्यान आया। मन बहलाने के लिहाज से उसने शायरा के घर हो आना मुनासिब समझा।

बेल बजायी तो एक दुबली-पतली अधेड़ महिला ने दरवाजा खोला और मुस्कराकर हाथ के इशारे से भीतर चले आने को कहा। मणि ने दो-चार बातें उससे की, मगर उसने मुस्कराने के सिवा कोई उत्तर नही दिया। मणि को वह बडी रहस्यमयी लगी।

जब काफी देर तक शायरा नही दिखी तो मणि को घबराहट-सी होने लगी। पूछने पर कुछ जवाब नही मिला, बल्कि मुस्कराहट के साथ बैठे रहने का इशारा किया गया। या तो वह गूंगी औरत थी या फिर हिन्दी नही जानती थी?

समय बिताने को जब चारों ओर निगाह डाली तो कमरों मे चारों ओर खूबसूरत बच्चों के चित्र टंगे थे। साइड मे टेबल पर कुछ पुस्तके रखी थीं तथा एक अलमारी मे ढेर सारे फल। मणि के चेहरे पर मुस्कराहट फैल गई। "बड़ा ख्याल रखती है शायरा अपना व अपने होने वाले बच्चे का। लगता है, इसके पति बडे समझदार हैं इस मामले में। बीच का आदमी भला क्या कर ले। अब रवि को ही लो। कम प्यार करता है? पर भई सुख-सुविधाये तो अपनी औकात से ही जुटाई जा सकती हैं!"

मणि सोच ही रही थी कि बाहर कार की घरघराहट सुनाई दी। आवाज उस अधेड़ महिला ने भी सुनी। भागकर मेन गेट पर गई। शायरा आ गई थी।

शायरा बड़े खुश और खुले मन से मिली और खुशी से चिल्ला पड़ी, "अरे तुम, तुम सच मे आओगी ऐसा तो मैंने सोचा भी न था।"

"क्यू? ऐसा क्यों सोच लिया तुमने भला?"

"बस यू ही। लाइफ मे काफी लोगों से मिली हूं न! अक्सर लोग टाइम पास करने के लिए बात करने का नाटक करते हैं और फिर जहां का तहीं मुलाकात को प्रायः दफन कर जाते हैं।"

"चोट खाई हुई लगती हो ?" मणि ने हंसते हुए चुटकी ली।

"ओ नो, ऐसी कोई बात नही, वैसे ही जरा-सा अनुभव तो है। खैर, छोड़ो। हां, और सुनाओ, कैसी गुजर रही है ? अरे तुम्हारा एक छोटा-सा मुन्ना है न, तुमने बताया था उस दिन।"

"हा, है न। रिन्कू, बड़ा प्यारा है।"

"लाई क्यो नही उसे ?"

"मा के पास गया हुआ है, फिर कभी लाऊंगी।"

"मा के पास ? मां मिन्स···।"

"मेरी मां, उसकी नानी है न···।"

"ओह मणि, तुम्हारी मा बडी अच्छी है। मिलाओगी मुझे ? सच में तुम्हारी मां ग्रेट है।"

मणि ने लक्ष्य किया, शायरा की आवाज भारी हो गई थी और पलकें नम हो आई थी। उसने बात का रुख ही बदल डाला।

"शायरा बहन, यू ही बातो में टरकाती रहोगी या इस भयंकर गर्मी में कुछ ठंडा-वंडा···?"

"ओह, मैं भी कैसी बेवकूफ हू, भूल ही गई। अरे···इस्मत···भई जरा कोल्ड ड्रिक्स···"

जब कोई जवाब नही आया तो मणि के कौतूहल को शान्त करते हुए शायरा ने कहा, "गूगी है बेचारी। यू बडी भली है। मेरा बड़ा ख्याल रखती है।"

"सो तो है ही, अपने मालिक को देखती होगी न जान देते हुए। मैं तो कमरे मे पैर रखते ही समझ गई थी कि देवी जी का कितना ख्याल रखा जाता है।"

शायरा ने मणि की बात का कोई जवाब नही दिया। उसकी आखें पुनः नम हो गई। मणि ने अपनी कही बातों पर ध्यान दिया, मगर कोई बात ऐसी-वैसी न थी कि जिससे किसी के दिल में चोट लगे। फिर क्यों ऐसा हुआ ? घबराई हुई-सी मणि बोली, "मुझे माफ कर दो बहन, मैं तो यहां तुमसे बातें करके मन बहलाने आई थी। मेरा मकसद तुम्हे दुखी करना न था, तुम्हारे मन में क्या है मैं नही जानती। पर कुछ है

जो तुम्हें बार-बार मायूस कर देता है।···अच्छा फिर मिलेंगे।" मणि जल्दी से उठकर बाहर आना चाहती थी कि शायरा ने उसका रास्ता रोकते हुए कुछ देर रुकने का आग्रह किया। फिर एक सन्नाटा छा गया।

"मणि, तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि मैं एक कुमारी मा हू। सुनकर शायद तुम घृणा करने लगोगी।"

"मगर तुमने तो कहा था, तुम्हारे हसबैंड···।"

"यह सब बकवास था। यूं ही झूठ बोल दिया था।"

"फिर···तुम्हारा बच्चा···ओह···अब समझी। छिः-छिः···तुम इस कदर गिरी हुई औरत हो! अगर मुझे पहले पता होता तो इस बदनाम राह पर कदम भी न रखती। हाथ छोड़ो मेरा। अगर मेरे पति को पता लग गया तो वे भला क्या सोचेंगे!"

"नही···नही, ऐसी बात नही है। मैंने कोई गलत काम नही किया है और न ही घृणा की पात्र हूं।"

"तब फिर क्या हो तुम? कुंवारी लड़कियां इसी प्रकार मां बनकर अवैध सन्तानों को जन्म देती रही तो आने वाली पीढ़ी का क्या होगा?"

"नहीं···नहीं···नहीं···न ही मैंने गलत काम किया है, न ही आने वाली सन्तान अवैध कहलाएगी तुम मुझे गलत मत समझो। मैं एक मा हू। मगर किराये की मां। जिससे जन्म देने के कुछ सप्ताह बाद उसके बच्चे को छीन लिया जाता है।"

"ओह, हे ईश्वर! अब क्या यह देखना-सुनना बाकी था? क्या मातृत्व का भी व्यापार होने लगा है? क्या अब नारी की कोख टेस्ट-ट्यूब बनकर रह जायेगी?"

"मेरी मां का भी यही पेशा था। मां गरीब और अनाथ थी। बदकिस्मती से अल्लाह ने उसे गजब का शबाब दिया था। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती जा रही थी, हुस्न रंग ला रहा था और हुस्न के भूखे भेड़ियों की निगाहें कदम-कदम पर उसे निगल जाने को तैयार थी। मगर बिना किसी साये के जवान औरत का जिन्दगी बसर करना बड़ा दुश्वार था। जिस्म को ढकने व पेट की आग को बुझाने के लिए इन्सानों के जगल मे

निकलना बड़ा जरूरी था। मगर मां को एक खौफ था कि कदम-कदम पर औरत के मांस के भूखे भेड़िये, उसे चन्द लम्हों में लुकमा बनाकर निगल जायेंगे तथा नापाक करके बदनाम राहों पर जिल्लत की जिन्दगी जीने पर मजबूर कर देंगे...।

"एक दिन भूख से तड़पती मां किसी धनी के दर पर जा गिरी। वह एक बे-औलाद अमीर का मकान था। पति-पत्नी बड़े खुश हुए। उन्हीं के बताने पर मां, उन्हीं के अंश से डाक्टरी मदद लेकर उनके घर के चिराग की रचना का काम करने लगी। चूंकि उसकी पत्नी बन्ध्या थी, वे सन्तान की कल्पना मात्र से फूले न समाते थे। अमीर दम्पति को औलाद की भूख थी, मां को पेट की। मां को बड़े ऐशोआराम व इज्जत से रखा जाने लगा। अच्छी खूराक, अच्छी रिहायश, अच्छा साहित्य तथा कपड़ा...।

"नौ महीने बाद मां ने एक खूबसूरत बच्चे को जन्म दिया: चन्द ही हफ्तों में अमीर दम्पति ने फूल-से बच्चे की एवज में काफी रुपया-पैसा व अन्य उपहार देकर मां को रुखसत कर दिया। कहते हैं, मां बहुत रोई थी। कुछ दिन तो छुप-छुपकर उसे देख आया करती थी। एक दिन गई तो मालूम हुआ कि वह दम्पति अपनी हवेली में बड़ा-सा ताला लगाकर बच्चे को लेकर कहीं दूर दुनिया की भीड़ में खो गए।

"कुछ रोज तो मां ने बड़े ठाठ से काटे। मगर कहते हैं न, निठल्ले बैठे खाने से तो कुएं भी खाली हो जाते हैं। पैसा खत्म होने लगा। चिन्ता सताने लगी। एक बार दो-चार लोगों से सम्बन्ध बनते-बनते भी रह गए। क्योंकि ऐश करना तो हर कोई चाहता था, मगर जिन्दगी-भर के लिए हाथ थामना कोई नहीं। मां को शादी के नाम से ही नफरत होने लगी। उसके बाद फिर मां किराये की मां बनी। हर बार वही सुख-दुख झेलने पड़े।

"एक बार खूब हुई। जब मैं दुनिया में आई तो मामला गड़बड़ हो गया। कान्ट्रैक्टर दम्पति ने लड़के की तमन्ना से कान्ट्रैक्ट किया था, मगर लड़की पैदा होने पर उसके माथे पर शिकन उभर आई। मां अब तक पक्की व्यापारी बन गई थी। काफी झगड़ा किया। अन्त में काफी

पैसा ऐंठकर तथा पढ़ाई इत्यादि का पैसा भी वसूल करके उसका पीछा छोड़ा। शायद मां ऐसा ही चाहती थी, क्योंकि ऐश से जीने की लत पड़ गई थी, सो हम अच्छी तरह रहने लगे।"

"तुम्हारी मां ने फिर विवाह नहीं किया ?"

"नहीं, मां को सारे समाज से घृणा हो गई थी। और अगर इच्छा करती भी तो मां के पेशे को देखते हुए कौन चाहता उसे उम्र-भर बांधना ? मां ने कभी बंधना चाहा भी नहीं। वे कहा करती थी कि पुरुष अपने स्वार्थ के लिए औरत को गुलाम बनाके रखता है। मैं गुलाम बनना नहीं चाहती।"

"तुमने अपनी मा का पेशा अपनाना कैसे मंजूर कर लिया ?" मणि ने जरा झिझकते हुए पूछा तो एकबारगी शायरा खामोश रह गई।

"यह पेशा मुझ पर थोपा गया है, जबरन ! मैं शादी करना चाहती थी। अपना घर बसाकर रहना चाहती थी। एक ऐसा घर जिसकी लालसा हरेक को होती है मगर····"

"बोलो, रुक क्यों गई ? अगर तुमने अपनी इच्छा अपनी मां पर जाहिर की होती तो भला वे मना कर सकती थी ?"

"शायद न करती। इस बीच एक हादसा हो गया। इत्तफाक नाम के एक व्यक्ति से मेरी मुलाकात हो गई। शादी-ब्याह की बात आई तो मा का पेशा तथा बाप का नाम दीवार बनकर खड़ा हो गया। मां के मुंह से सारी बातें सुनने के बाद उसने शक्ल ही न दिखाई। मेरा सपना बालुई पुल की तरह ढह गया और उसके मलबे के तले दबी शायरा ने अपना फैसला बदल दिया। मां खुश हुईं। और कोई विकल्प ही न था।"

"तुम जब इस पेशे मे पड़ ही गई तो फिर उदास क्यों हो जाती हो?"

"हां···मैं उदास हो जाती हूं, क्योंकि पहले प्रसव के बाद मैंने मा की ममता और दर्द को समझा। मगर धन के बल-बूते पर धनी लोग उसे बड़ी बेदर्दी से खरीद ले जाते हैं मानो वह कोई खिलौना हो। अब मैं महसूसने लगी हूं कि औरत की कद्र ही इस मातृत्व के कारण है वर्ना

तो आज का इन्सान जंगली हिंसक पशुओं से भी बदतर है। जंगली पशुओ की अपनी कोई पहचान, कोई सीमा तो होती है मगर आज के गर्म खून के प्यासे इन्सान की न अपनी कोई पहचान है और न सीमा। मैं तड़पती रही, बच्चा भी रोता रहा, मगर मूल्य दिए जा चुके थे। मां की ममता बिक चुकी थी। मां की चीखती पुकार को चांदी के सिक्कों तले दबा दिया गया ताकि उस आवाज से उनके कानों के पर्दे न फट जाएं।"

बाहर बेल बज उठी। इस्मत भागकर गई। सभी की आंखें दरवाजे पर लगी थी। एक अधेड़ दम्पति अन्दर आए। पीछे-पीछे नौकर फलों का टोकरा लिए आ रहा था।

"अरे मिस शायरा, तुम आज बहुत उदास हो? क्यू भाई, ऐशा कैशे चलेगा। भई, बच्चे पर गलत अशर होता है। अरे भाई, हशो-खेलो, खाओ-पिओ। कोई चीज का किल्लत होवे तो बोलो। हम अबी-अबी डाक्टर पदमावती से मिलकर आए हैं, एडवान्स भी दिया। अरे तुमने तो कल वाला फरूट भी खत्म नेईं किया। मां कसम, ऐशा गुशा आया है कि पूछो न। अरे रमेश, चल जल्दी से जूस बना दे। अरे इस्मत, तुझे फिर इदर क्यों छोरा है भई। इश को नारियल नईं देता क्या? तुम नही जानता नारियल खाने से बच्चा सफेद रंग का होता है। हम कू चांद-सा गोरा पुत्तर मांगता है।" इसके साथ ही महिला ने प्यार दर्शाते हुए शायरा के सिर पर हाथ रख दिया।

मणि देख रही थी, इन्सान अपने स्वार्थ के लिए क्या से क्या कर देता है? पैसे के लिए इन्सान क्या से क्या बन जाता है? ये धनी व्यक्ति तो अब ईश्वर को भी चैलेंज करने चले है।

कुछ देर वे लोग खिला-पिलाकर वापिस कार में जा बैठे। शायरा केवल औपचारिकतावश मुस्करा रही थी। उस दिन मणि को भी डट कर फलों का रस मिला। मगर इस वक्त वह रस विषाक्त पेय लग रहा था।

"देखा तुमने, किस कदर ये लोग जीवन में ममता का रस जुटाने मे बेहिसाब दौलत लुटा रहे हैं? एक हम हैं जो चन्द चांदी के सिक्कों

की खातिर मजबूर होकर अपने जीवन को शुष्क रेगिस्तान बना लेते है।" शायरा हथेलियों से अपना चेहरा ढापकर रोने लगी। बड़ी मुश्किल से मणि ने शायरा को चुप कराया। मुक्ति के लिए कोई युक्ति सोचने में तल्लीन दोनो सहेलियां अलग-अलग दिशाओं मे चल दी।

अगले दिन जब मणि शायरा के फ्लैट पर गई तो वहां गूंगी इस्मत को रोते पाया। उसके हाथ में बहुत छोटा-सा पुर्जा था जिस पर लिखा था, "मातृत्व की रस सरिता को शुष्क होने से बचाने के लिए कही भी चली जाऊंगी, जीने के लिए तिनके का सहारा भी बहुत होता है।"

शायरा इतनी जल्दी किसी नतीजे पर पहुंच जाएगी, मणि को ऐसी आशा नही थी। पुर्जा उसके हाथों से गिरकर कमरे में इधर-उधर उड़ने लगा। एक ठण्डी आह निकल गई मणि के मुंह से। उसके अन्दर उठता अंधड मानो एकदम रुक गया था। ममता की सुरक्षा में उठाये गए शायरा के इस कदम मे एक सुखद अनुभूति के फलस्वरूप प्रसन्न मुद्रा मे वह झटपट जीना उतर गई।

मरी हुई शाख

भैया को अपनी आदत के मुताबिक खुरपी, कैंची, कुल्हाडी उठाकर जाते देख अन्नू को समझते देर न लगी कि भैया बगीचे में जा रहे हैं। तभी उसे याद आया, आज संडे है क्योंकि भैया हर रविवार को अपना सुबह का सारा समय बगीचे में लगा देते हैं।

अन्नू को ससुराल से आए तीन दिन हो गए थे, पर भैया से सिवा दुआ-सलाम के कोई बात न हो पाई थी। मौका ही न मिला था। अगर कभी अवसर आया भी तो शायद भैया बडी चतुराई से व्यस्तता का बहाना बनाकर टाल गए थे। हां, भाभी से उसे इतना तो मालूम हो गया था कि भैया उसके इस तरह ससुराल से चले आने पर नाराज हैं। सुनकर अन्नू का मन भर आया था, रुलाई फूट पड़ी थी। उसे सिसकता देखकर, भाभी ने ही समझा-बुझाकर चुप कराया था। भाभी बड़े प्यार से बोली थी, "अन्नू, तुम इस तरह रो-रोकर परेशान मत होओ। मैं तुम्हारे भैया को समझा दूगी। यहां पर हाल ही में डा० मिश्रा आई है। बड़ी योग्य है। ईश्वर चाहेगा तो सब ठीक हो जायेगा।"

भैया की खामोशी उसे सालती रहती। अपने ही घर मे वह बेगानी थी। ओह, जिस घर मे उसने पिछले पच्चीस साल बिताए थे अब इस कदर बेगाना-सा क्यो लगने लगा है? सब कुछ तो वैसा ही है। पापा की तो उसे याद ही नही। उसके जन्म से पूर्व ही चल बसे थे। सब कुछ है। एक मां की कमी खटकती है, शायद सबसे बड़ी कमी, जिसकी पूर्ति नामुमकिन है।

बबलू कही से खेलता हुआ आ निकला। हाथ पकड़कर बोला, "आण्टी, चलो छुप्पा-छुप्पी खेलें बाग में।" एकटक निहारती रह जाती है

अन्नू। कितना प्यारा है बबलू ! वह अपनी बात फिर दोहराता है, "चलो न आण्टी।"

"तुम जाओ बेटे।" अन्नू प्यार से उसका गाल सहलाते हुए बोली।

"नहीं आण्टी, हम अकेले नहीं जाएंगे।"

"अच्छा तुम चलो, पर खेलेंगे नहीं, तुमने कहा था न कहानी सुनाएंगे।"

बबलू अन्नू की बांह पकड़कर खेलता हुआ चलने लगा। बालसुलभ प्रेम को देखकर अन्नू खिल उठी। कितना प्यारा और भोला बच्चा है? काश, ईश्वर सुन लें। अन्नू के मुंह से अनायास एक सर्द आह निकल पड़ी।

बगीचे में जाकर वह दोनों पत्थर की शिला पर जा बैठे। कुछ देर बतियाते रहे। तभी बबलू को एक उड़ती हुई तितली दिखाई दी। लगा उसके पीछे भागने। अन्नू मंत्रमुग्ध-सी उसे देखती रही। थोड़ी-थोड़ी देर से अन्नू कनखियों से कार्यव्यस्त अपने भैया की ओर भी देख लेती थी। भैया पीली पत्तियो तथा फालतू घास उखाड़-उखाड़कर फेंक रहे थे।

काम में खोए भैया को अब वह गौर से देखने लगी। वे कुछ खाली पड़ी भूमि पर गुलाब रोप रहे थे। पिछले साल अन्नू ने भी तो गुलाब का पौधा रोपा था। पर ससुराल मे घटी एक घटना ने उसे तड़फा दिया। ससुराल मे बगीचे का काम अन्नू की छोटी ननद मीनाक्षी देखती थी। उस दिन उसके साथ पौधे रोपने की इच्छा अन्नू की भी हो आई। उसने भी गुलाब की एक कलम रोप दी। अन्नू ने देखा कि मीनाक्षी का मूड कुछ ऑफ-सा हो गया। उससे रहा न गया, बोल पड़ी, "दीदी, क्या बात है मेरा पौधे रोपना शायद आपको अच्छा नहीं लगा?"

"नहीं-नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं, मगर वो अम्मा...?" मीनाक्षी कुछ हिचकिचा रही थी कि पीछे से आकर अम्मा जी ने झट उसकी बात को पूरा कर दिया।

"हां-हां, मैंने ही कहा था। कहते हैं, बांझ औरत के हाथ का रोपा पौधा कभी फलता नहीं। है भी ठीक। अब तुम ही देख लो, तुम रोज

तुलसी बिरवे को सींचती हो, मगर तुमने शायद ध्यान नहीं, दिया इतनी सार-सम्भाल के बावजूद वह सूखा जा रहा है।"

अन्नू की आंखें छलछला आईं। उससे वहां खड़ा नहीं रहा गया। वह भागकर अपने कमरे में चली गई और फफक-फफककर रोने लगी।

वैसे तो आए दिन ही कोई-न-कोई बात हो जाती थी। मगर ये लोग इस प्रकार खुल्लमखुल्ला तानाकशी करने लगेंगे, ऐसा अन्नू ने कभी सोचा भी न था।

बड़ी बीबी जब बच्चों को लेकर आईं तो जरा-सी देर भी उसके पास बच्चों को अकेला नहीं छोड़ती थी। जरा-सा अगर प्यार कर दिया तो, खून भरी आंखों से देखने लगती थी या फिर बच्चों को डांट देती थी। अब तो हद ही हो गई थी। अन्नू बेचारी क्या करती, उसके क्या बस की बात थी! उसके दिल पर आए दिन नित नये वार होते थे। यद्यपि विवाह को केवल पांच साल हुए थे, पर पता नहीं क्यों वे लोग इतने बेसब्रे और निराश हो चुके थे।

एक दिन की बात है यह बड़े वाली ननद के साथ खड़ी डाक्टर को चेकअप करवाने गई। एक महिला उसके करीब बैठी थी नन्हें-से बच्चे को गोदी में लेकर। ननद से बातचीत के दौरान पता चला कि उसके एक के बाद एक पांच साल में तीन बच्चे हो गए थे। अब वह आपरेशन के लिए बात करने आई है।

अन्नू उसके बच्चे को पुचकार रही थी और बार-बार हंस रही थी,. कि उसके कानों में आवाज आई। उसकी ननद उस महिला से उसके बांझ होने की बात कह रही थी। उसका रंग उड़ ... ंठ खामोश हो गए।

थोड़ी ही देर में उस महिला में अद्भुत

जांच की रिपोर्ट निगेटिव आई। फिर उस पर खुल्लमखुल्ला अत्याचारों की भरमार होने लगी। शुरू-शुरू में तो योगेश कुछ नहीं कहता था पर अब तो वह भी बदल गया था।

घर में थोड़ी-बहुत पुनर्विवाह की खुसर-फुसर चलने लगी। अब अन्नू की सहन शक्ति जवाब देने लगी थी।

एक दिन सुबह-सुबह बरेली वाली भुआ जी आ धमकी। उनके साथ उनकी जेठानी की लड़की भी थी। देखते ही अन्नू का माथा ठनका।

एक दिन तो भुआजी ने कमाल ही कर दिया। खुले आम योगेश के दूसरे ब्याह की घोषणा कर दी। साथ ही अन्नू पर दया भी दिखा दी। अन्नू भी इसी घर में रहेगी। बालक की तमन्ना में तो लोग जाने क्या-क्या कर गुजरते हैं! वह भला इतनी-सी बात नहीं मानेगी? पहले जमाने में तो औरतें स्वयं अपने पतियों को मजबूर किया करती थी।" अन्नू को काटो तो खून नहीं। उसके होंठ मानो सिल गए। जबान को मानो लकवा मार गया था। चुपचाप जहर का घूट पी गई।

योगेश से उसे हमदर्दी की कोई उम्मीद न थी। उसकी खामोशी से साफ जाहिर था कि उसे कोई एतराज न था। फिर इन चार दिनों में वह कल्पना के काफी निकट आ गया था। अन्नू की आखों को सब कुछ समझते देर न लगी।

अचानक एक ऐसी घटना घटी कि उसे बोलने पर मजबूर कर दिया गया। अन्नू कपड़ों पर इस्त्री कर रही थी कि अचानक ख्याल आया कि वह गैस पर दूध रखकर आई है, वह तुरन्त किचिन की ओर भागी। इसी दौरान कल्पना अपनी कमीज लेने आई। अनजाने में उसका पाव मेज के नीचे रखी प्रेस से सट गया। वह चीख उठी। पांव पर फफोले हो गए थे। बस फिर क्या था? अन्नू पर लांछन लगाया गया कि सौतिया डाह के कारण अन्नू ने जान-बूझकर ऐसा किया। अन्नू ने लाख विश्वास दिलाने की कोशिश की पर एक न चली। अन्त में उसने कह भी दिया, "आप लोगों को अगर मैं इस कदर खटकने लगी हूं तो मैं यहां से…?"

इसी बीच अम्मा जी ने गुस्से में आगबबूला होकर प्रेस उठाई और अन्नू की पीठ से सटा दी। तीव्र वेदना के कारण एक चीख के साथ ही

वह मूर्छित हो गई। होश आया तो अपने कमरे में पड़ी थी। पड़ी-पड़ी सिसकती रही। योगेश रात देरी से आया। अन्नू की आशा के विपरीत वह आकर चुपचाप सो रहा। अब उसके धीरज का बांध टूट गया पर करे तो क्या? उसने देख लिया कि उसके जख्मों पर फाहा रखने वाला कोई भी तो नहीं। अब वह किसी तरह मिन्नत-मुहताजी करके उन लोगों को मनाकर भैया के यहां पीहर में आ गई। पर भैया···?

एक गेंद आकर उसके पास गिरी। वह घबराकर इधर-उधर देखने लगी। बबलू खिलखिला पड़ा, "आण्टी···हम यहां हैं।" मेहदी की झाड़ियों के पीछे से बबलू झांक रहा था।

भैया सूखी हुई डालियों को कुल्हाड़े से काट-काटकर फेंक रहे थे। पास में ही खड़ी गुड़िया पूछ रही थी, "पापा ये, डालियां क्यों काट रहे हो?"

"बेटा, ये डालियां बेकार हैं। अब इन पर न पत्ते आएंगे, न फूल। बेकार में पेड़ की शोभा बिगाड़ रही है।" अन्नू को लगा वह भी तो एक सूखी डाल के समान है, जिस पर कभी बहार नहीं आएगी। बिल्कुल बेकार मरी हुई शाख, जिसे न मालूम कब पेड़ से तोड़कर फेंक दिया जाए।

वह लौट आई

"अरे, उसे ले जाकर क्या करेगी ? उसे क्या पता इन चीजों का !" मां ने मुंह बिचकाते हुए कहा ।

"मां···! क्या वह तुम्हारी बेटी नहीं है ?"

"बेटी होने से क्या हुआ ? जब वह ऐसे माहौल में ही नही रही तो···।"

"उसे जो माहौल मिला, उसकी जिम्मेवार आप हैं मां ।"

"चुप रह लड़की, बड़ी बदतमीज हो गई है ।"

"सच कहने पर तुम्हें बुरा क्यों लगा मां ?"

"क्या तुम्ही ने दीदी का रिश्ता उस गरीब व असमर्थ परिवार में नहीं किया ?"

"इससे क्या होता है यह तो अपनी-अपनी किस्मत की बात है। जो उनकी किस्मत में लिखा था हो गया । इसमें हम, तुम या कोई भी क्या कर सकता है ?"

"किसी की किस्मत बनाने और बिगाड़ने वाले तुम्हारे जैसे ही हैं मा ! आपने अपने स्वार्थ के लिए अपनी बेटी की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ किया है । वह बेचारी गऊ की तरह बिना किसी विरोध के उसी पथ पर अग्रसर हुई जो तुमने उसे दिखाया ।"

"अब तुम क्या चाहती हो ? यह रोज-रोज की चखचख मुझे पसन्द नहीं है । इधर कई रोज से देख रही हूं, कालेज जाने के बाद से, तुम बड़ी बदजुबान होती जा रही हो ।"

"मुझसे दीदी के साथ होने वाला दुर्व्यवहार देखा नही जाता, सहा नहीं जाता मां । जिस दीदी ने तुम्हारे दुर्दिनों में साथ-साथ दुःख झेले,

तुम्हारे रोने पर रोई, तुम्हारे हंसने पर हंसी, आज उसी के साथ ऐसा व्यवहार क्यों ?"

"कैसा व्यवहार ? क्या उसे खाना-कपड़ा नहीं मिल रहा ? अपने घर में कौन-सा···?"

"बस करो मां, फिर वही घर-घर ! वही घर न, जो उसके लिए तुमने चुना ? सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए। तुम्हें पैसा प्यारा लगा मां, भला बताओ तो क्या कमी थी दीदी में ?"

"पैसे की बात छोड़, उसे होश ही नहीं कि किस तरह सोसाइटी में बैठते-उठते हैं। बस फूहड़ों की तरह सारा दिन बैठी रहेगी। ऐसे में कहीं से जाकर, या किसी से मिलवाकर अपनी···।"

"एक बात कहूं मां, तुम्हारा स्टैण्डर्ड कब बना ? जब तुम्हारे दिन फिरे तो तुम्हें उसकी याद क्यों न आई ? तुमने तो उस निरीह की सालों सूरत नहीं देखी और न ही हम लोगों को उससे कोई सम्बन्ध रखने दिया। अब तो वे क्या खाक स्टैण्डर्ड बनायेंगी ! उनकी तो वह हालत भी भगवान से देखी न गई।"

"तभी तो इतने दिन से यहां रख छोड़ा है कि कहीं रोटियों···।"

"मां, यह तो दीदी है, अगर उनकी जगह मैं होती तो···? अभी कल ही पप्पू के साथ जो व्यवहार किया है क्या वह सही था ?"

"क्यों क्या हुआ ? क्या अपने घर में कभी ठंडी···।"

"अपने घर में वह चाहे कैसे रहते हों। यहां आकर भी अगर वे तुम्हारे बचे-खुचे टुकड़ों पर दिन काटें तो, तुम्हारा धन-दौलत, ऐशो-आराम उनके किस काम का···इससे तो कहीं नौकर···!" नीला पांव पटकती हुई कमरे से बाहर निकल गई।

मां फिर भी बड़बड़ाती रही, "ऊंह, ···
वकालत करने। किसी को रहना हो रहे ···
कोई उम्र-भर का ठेका थोड़े ही ले रखा है।"

किसी को यह पता न चला कि आरती ···
नीला अपनी मां से झगड़ रही थी, आरती ···
ही खड़ी थी। मां के ··· शब्द बाणों

गया। उसके लिए वहां खड़े रहना मुश्किल हो गया तो दबे पांव खिसक आई और कमरे में आकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसे अपने-आप पर क्रोध आ रहा था। क्यों न उसने अपने बड़े बेटे विजय का कहना माना? क्यों चली आई वह मां के पास रहने?

"ओ···यहां रहने से तो अच्छा था वहीं पड़ी रहती। हाय, मां के मन में उसके प्रति ऐसी भावना!" उसे विजय के साथ हुई उस दिन की बातें याद आने लगीं···।

"क्या बात है मां? आज यह सामान कैसे बांधा जा रहा है?"

"बेटा, सोच रही हूं, अब तो तेरी छुट्टियां हो रही हैं, कुछ दिन मां के पास क्यों न रह आएं!"

"नहीं मां! हम वहां नहीं जायेंगे! वहां पर हम अपने को अपमानित महसूस करते हैं।"

"क्यों रे, तू तो बड़ी-बड़ी बातें करने लगा। क्या बात है ऐसी, जो तेरा अपमान होता है। यहां से तो अच्छा खाने-पहनने को मिलता है।"

"लानत है ऐसे खाने पर मां। मुझे आज भी याद है पिछली बार मामी से मैंने कहा था, 'मुझे यह सब्जी नहीं भाती।' तो पता है उन्होंने क्या कहा था?"

"क्या कहा था रे?"

"'वाह···राजकुमार के नखरे तो देखो, जैसे अपने घर में पुलाव खाते हो?'"

"तो क्या हुआ, मामी है, मजाक किया होगा।"

"मां, तुम समझती क्यों नहीं? क्या मैं निरा बुद्धू हूं जो मजाक समझता नहीं?"

"जरा अपनों का सहारा हो जाता है रे, और अपना है ही कौन?"

"मां दूसरों की बैसाखी के सहारे चलने से तो अपने पैर ही अच्छे। चाहे कमजोर हैं पर हैं तो अपने।"

"पता नहीं तू कैसी-कैसी बात करता है? तुझ पर कितना बोझ है रे, सारा दिन दुकान पर काम और रात देर तक पढ़ाई।"

"तो क्या हुआ मां। काम करना तो अच्छी बात है। बेकार आदमी

की भी कोई जिन्दगी है ?"

अगले दिन पता नहीं क्या सोचकर विजय ने कहा "मां···अगर आपका मन जाने का है तो, जा सकती हो। पप्पू को लेती जाओ।"

"और तू ?"

"मेरी चिन्ता न करो, मैं कहीं भी खा लूंगा।"

···वह चली आई थी। काश, विजय उस वक्त अपनी बात पर अड़ जाता, हमें भी रोकता। पर रोकता कैसे, बच्चा ठहरा। मां का विरोध कैसे···।

वह सोच रही थी। सच ही तो है। उसकी इस घर में कदर ही क्या है। सारा दिन नौकरानी की तरह खटती है। कोई आए तो कोई जाए। रसोई से बाहर ही नहीं आ पाती और न ही ये लोग जरूरत समझते हैं। हो सकता है लोग उसे नौकरानी···पर नहीं, कहीं ऐसे भी होता है ? पर अब तो पप्पू भी हर किसी की निगाहों में खटकने लगा है। जरा-जरा-सी बात पर ठुकाई कर देता है हर कोई ! कल भी मां ने टोनी के कहे में आकर ज़ोरदार थप्पड़ जड़ दिया था, अब तक निशान नहीं गया। उसे भी तो गुस्सा आ गया था, दो-चार चांटे और टिका दिए थे।

ओह, बेचारा नींद में भी सुबकता रहा था। भूखा ही सो रहा था। सुबह उठते ही कहने लगा था "मां, भैया के पास कब चलोगी ? हम यहां नहीं रहेंगे।"

मां को न जाने क्या हो गया है। पहले तो वह ऐसी न थी। क्या धन-ऐश्वर्य आदमी को एकदम बदल के रख देता है ? कहां गई वह ममतामयी मां ? अब तो उसके चेहरे पर ममता नाम की कोई चीज ही नजर नहीं आती। अब मां को वह पराई लगने लगी है। जरा-जरा-सी बात में चिढ़ जाती है। हर वक्त अपनी ही लड़ाई में लगी रहती है। उसे उसकी यह आदतें पसन्द नहीं आती, पर चुप रहती है। चुप रहना ही बेहतर है। उसे बोलने का हक ही क्या है। वे धनी हैं और वह ठहरी एक मामूली क्लर्क की बेवा और दो गरीब बेटों की मां।

वह सोचने लगती है। क्या पैसा खून की लालिमा को हड़पकर

सफेद कर देता है। वह भी एक मां है, उसकी रगों में भी खून है, लाल-लाल। उसे यहां से चले जाना चाहिए, अपने बच्चों के पास। आज ही। इसी समय। कहीं उसका खून भी···नहीं-नहीं।

"क्या हुआ दीदी ? तुम रो रही हो ?" सामने, नीलू खड़ी थी। उसके हाथ में पैकेट थे।

"कुछ भी तो नहीं ! बस यूं ही जरा।"

"तुम तो रो रही हो दीदी, पर क्यों ?"

"नहीं री नीलू, अब मैं अपने विजय के पास···!

"सच, दीदी।" और नीलू उससे लिपट गई।

काफी देर तक दोनों बहनें आंसू बहाती रहीं।

"हां दीदी, तुम्हें यहां से चले जाना चाहिए। तुम्हारा अपना घर है दीदी। छोटा ही सही, पर तुम्हारा है। उसमें तुम्हारा ही राज चलता है। तुम उसकी मालकिन हो। दो फूल जैसे बच्चे हैं तुम्हारे कल जवान हो जायेंगे। तुम्हें भला किस बात की चिन्ता है ?"

"हां···री मैं तो भूल ही गई थी। भला अब मेरा इस घर से···।"

कुछ समय बाद ही नीलू ने आकर कहा, "चलो दीदी, रिक्शा तैयार है। देखो, पप्पू तो उसमें कभी का जा बैठा ! देखो मैं भी तैयार होकर आ गयी।"

"अरे, तू कहां जा रही है ? तेरी तो अभी छुट्टियां बाकी है ?"

"हां, है तो ! पर अब मैं यहां एक मिनट भी न रह पाऊंगी दीदी। मैं आज ही होस्टल लौट जाऊंगी।"

"मां कहां है ?"

"शॉपिंग के लिए बाजार गई है।"

"और भाभी ?"

"भैया के साथ पिक्चर।"

"चलो दीदी, गाड़ी का समय हो रहा है और कोई तुम्हारी राह में दिन गिन रहा है।" पल-भर रुककर फिर बोली :

"हां दीदी, तुम्हारा विजय तुम्हारी राह देख रहा होगा। और हां, यह रख लो।"

"यह क्या है री ?"

"एक छोटी बहन की ओर से अपनी दीदी को छोटी-सी भेंट।" उसका गला भरा गया।

दोनों बहनें विपरीत दिशाओं में रवाना हो गईं।

मां को आया देख, विजय फूला न समाया। उसने भागकर मां के चरण स्पर्श किए और अपने पप्पू को गोद में उठाकर चूम लिया। उसे देखते ही पप्पू न मालूम क्यों फूट-फूटकर रो पड़ा।

"अरे, इसे क्या हुआ मां ?"

"कुछ भी तो नहो। यूं ही तुझसे बहुत दिनों में मिला है न ! दिल भर आया होगा।"

"अच्छा, यह बात है। चल तेरे को चीज दिलाकर लाऊं।"

मां को वहीं छोड़कर दोनों भाई बाहर निकल गए। लौटकर आए तो पप्पू के हाथ मे कई खिलौने और मिठाइयां थीं। वह देखकर गद्‌गद हो गई। पप्पू खुश था पर विजय के चेहरे की तमाम खुशियां न मालूम कहा लुप्त हो गई थी। वह सोच में पड़ गई। अवश्य ही पप्पू ने कुछ कहा होगा।

भोजनोपरान्त जब लेटे तो उसने पूछ ही तो लिया।

"बेटे विजय, हमारे अचानक आने पर तुम्हें हैरानी नहो हुई ?"

"नहीं मां, मैं जानता था, तुम जल्दी लौट जाओगी ?"

विजय की गम्भीर मुद्रा देखकर उसे भय-सा लगने लगा। वह बार-बार कनखियों से उसे देख लेती थी। न मालूम क्यों विजय बार-बार दांत पीसकर मुट्ठियां बांध लेता था। पर थोड़ी ही देर में उसे हाथों का कसाव ढीला पड़ जाता था।

वह उसके मानसिक तनाव को समझ रही थी पर कुरेदने से कोई लाभ नहीं था, सो। खामोश ही रही

पैवन्द

कुछ माह पूर्व बरामदे में लगे बिजली के मीटर के ऊपर कबूतर ने अपना घोंसला बनाया था और कबूतरी ने अण्डे दिये। बड़े यत्न से दोनों ने अपने बच्चों की परवरिश की थी। वह रोज ही बड़ी तन्मयता से उसे देखता रहता। ऑफिस से लौटकर बरामदे में पड़ी आराम कुर्सी पर बैठकर थोड़ी देर आराम करना उसकी आदत-सी हो गई थी। उसी कुर्सी पर बैठे-बैठे सामने के घोंसले में बैठे छोटे-छोटे बच्चों को बड़ी स्नेहिल नजरों से देखता रहा। अपने माता-पिता को देख वे बच्चे कितनी प्रसन्नता व्यक्त करते, और अपने पखों को फड़फड़ाकर उनके साथ उड़ने को मचलने लगते, पर उड़ न पाते। कभी-कदास अगर कोई बच्चा घोंसले से बाहर आ जाता तो मां उसे फौरन सही स्थान पर पहुंचा देती।

मां-बाप बड़े यत्न से एक-एक दाना उनके मुंह में डालते रहे, और फलस्वरूप वे नन्हे बच्चे बढ़ते रहे। एक दिन इतने बड़े हो गये कि अपनी परवरिश स्वयं कर सकें। मां-बाप ने उन्हें उड़ना सिखा दिया था, बस फिर क्या था? ऐसे उड़े कि विशाल समूह में सम्मिलित हो गए और···और भूल गये अपने माता-पिता को। माता-पिता ने भी मानो उन्हीं के लिए बसेरा किया था। वहां से बच्चों के चले जाने के बाद वे फिर घोंसले में नहीं आए। अब सब एक जाति के थे, न कोई मां, न बाप। सब भूल चुके थे। उसने एक गहरी सांस छोड़ी। काश, इन्सान भी ऐसा कर पाता! काश, भूल जाता अपने अतीत को, भूल जाता अपने ममता-भरे नाते-रिश्तों को! उसका दम घुटने-सा लगा और एकाएक वह उठ बैठा।

"यह क्या है री ?"

"एक छोटी बहन की ओर से अपनी दीदी को छोटी-सी भेंट।" उसका गला भर्रा गया।

दोनों बहनें विपरीत दिशाओं में रवाना हो गईं।

मां को आया देख, विजय फूला न समाया। उसने भागकर मां के चरण स्पर्श किए और अपने पप्पू को गोद में उठाकर चूम लिया। उसे देखते ही पप्पू न मालूम क्यों फूट-फूटकर रो पड़ा।

"अरे, इसे क्या हुआ मां ?"

"कुछ भी तो नहीं। यूं ही तुमसे बहुत दिनों मे मिला है न! दिल भर आया होगा।"

"अच्छा, यह बात है। चल तेरे को चीज दिलाकर लाऊं।"

मां को वहीं छोड़कर दोनों भाई बाहर निकल गए। लौटकर आए तो पप्पू के हाथ में कई खिलौने और मिठाइयां थीं। यह देखकर गद्‌गद हो गई। पप्पू खुश था पर विजय के चेहरे की तमाम खुशियां न मालूम कहां लुप्त हो गई थीं। वह सोच में पड़ गई। अवश्य ही पप्पू ने कुछ कहा होगा।

भोजनोपरान्त जब लेटे तो उसने पूछ ही तो लिया।

"बेटे विजय, हमारे अचानक आने पर तुम्हें हैरानी नहीं हुई ?"

"नहीं मा, मैं जानता था, तुम जल्दी लौट जाओगी ?"

विजय की गम्भीर मुद्रा देखकर उसे भय-सा लगने लगा। वह बार-बार कनखियों से उसे देख लेती थी। न मालूम क्यो विजय बार-बार दांत पीसकर मुट्ठियां बांध लेता था। पर थोड़ी ही देर मे उसे हाथों का कसाव ढीला पड़ जाता था।

वह उसके मानसिक तनाव को समझ रही थी पर कुरेदने से कोई लाभ नहीं था, सो। खामोश ही रही

पैबन्द

कुछ माह पूर्व बरामदे में लगे बिजली के मीटर के ऊपर कबूतर ने अपना घोंसला बनाया था और कबूतरी ने अण्डे दिये। बड़े यत्न से दोनों ने अपने बच्चों की परवरिश की थी। वह रोज ही बड़ी तन्मयता से उसे देखता रहता। ऑफिस से लौटकर बरामदे में पड़ी आराम कुर्सी पर बैठकर थोड़ी देर आराम करना उसकी आदत-सी हो गई थी। उसी कुर्सी पर बैठे-बैठे सामने के घोंसले में बैठे छोटे-छोटे बच्चों को बड़ी स्नेहिल नजरों से देखता रहा। अपने माता-पिता को देख वे बच्चे कितनी प्रसन्नता व्यक्त करते, और अपने पंखों को फड़फड़ाकर उनके साथ उड़ने को मचलने लगते, पर उड़ न पाते। कभी-कदास अगर कोई बच्चा घोंसले से बाहर आ जाता तो मां उसे फौरन सही स्थान पर पहुंचा देती।

मां-बाप बड़े यत्न से एक-एक दाना उनके मुंह में डालते रहे, और फलस्वरूप वे नन्हे बच्चे बढ़ते रहे। एक दिन इतने बड़े हो गये कि अपनी परवरिश स्वयं कर सकें। मां-बाप ने उन्हें उड़ना सिखा दिया था, बस फिर क्या था? ऐसे उड़े कि विशाल समूह में सम्मिलित हो गए और···और भूल गये अपने माता-पिता को। माता-पिता ने भी मानो उन्हीं के लिए बसेरा किया था। वहां से बच्चों के चले जाने के बाद वे फिर घोंसले में नहीं आए। अब सब एक जाति के थे, न कोई मां, न बाप। सब भूल चुके थे। उसने एक गहरी सांस छोड़ी। काश, इन्सान भी ऐसा कर पाता! काश, भूल जाता अपने अतीत को, भूल जाता अपने ममता-भरे नाते-रिश्तों को! उसका दम घुटने-सा लगा और एकाएक वह उठ बैठा।

चन्द रोज बाद उसे ऑफिस से रिटायरमेंट मिलने वाला है। फिर, ओह ! फिर वह क्या करेगा ? इतना पैसा भी तो नहीं बचा पाया कि कोई छोटी-मोटी दुकान…?

खैर, देखा जायगा। अभी से चिन्ता काहे करनी। एक विचार आया और उसे झटक दिया उसने बड़ी ही लापरवाही से। कहीं जाने की सोचता है, पर सामने अपनी पत्नी गायत्री को चाय का प्याला थामे देखता है, तो वापिस बैठ जाता है। मुस्कराते हुए पत्नी की ओर देखता है और कहता है, "लाओ भाई, चाय में बड़ी देर कर दी आज? क्या बात है?"

"मुई लकड़ियां ही इतनी गीली हैं कि नाक में दम आ गया। आपको तो घड़ी-भर की भी फुर्सत नहीं कि जरा देख-भाल के सामान ले आओ। दूसरों को क्या पड़ी ? ला दी यही क्या कम है? पड़ोस के रवि से ही कहा था, जैसी मिली ला गेरी।"

"अच्छा बाबा, गरम काहे को होती हो। अब तो भई थोड़े दिन की बात है, फिर दिन-भर तुम्हारा ही तो हुक्म बजाना है। जैसा कहोगी करेंगे।" और वह खोखली-सी हंसी हंस दिया। गायत्री कप लेकर चली गई तो वह फिर गम्भीर मुद्रा में आसमान की ओर देखने लगा।

पता नहीं कब तक वह इसी मुद्रा में बैठा रहता कि अचानक कौवों का शोर सुनकर गली के नुक्कड़ वाले बिजली के खम्भे की ओर उसका ध्यान चला गया। ढेर सारे कौवे इकट्ठे होकर एक ही स्वर में काव-कांव कर रहे थे। शायद कोई कव्वा बिजली के तारों से छूकर एक ही झटके में धराशायी हो गया था। वाह, ये भी खूब हैं। झट से मातमपुर्सी को इकट्ठे हो गये हैं। देखते ही देखते शोर कम होने लगा। सब कव्वे अपनी-अपनी दिशा को लौटने लगे थे। ठीक ही तो है, बुद्धिजीवी इन्सान और क्या करते हैं। वे भी तो इसी प्रकार मातमपुर्सी में शामिल हो चन्द शब्द कहकर चल देते हैं। फिर ये तो पक्षी ठहरे।

रिटायरमेंट हुआ और पलक झपकते आठ माह हो गये। इस दौरान पत्नी ने कई बार कहा भी था कि चलो, बेटे के पास चलकर रहें। पर उसका मन नहीं मानता। बराबर टालता रहता था। उसके दिमाग में

एक ही बात चक्कर काटती रहती कि क्या विनोद लिख नहीं सकता था या आकर कभी मिल ही जाता। वह तो यूं कन्नी काट गया मानो हम कोई गैर हों। उसने तो रिटायर होने की बात भी लिख दी थी, पर जवाब नहीं आया। नहीं, वे कभी नहीं आयेंगे। उसका चेहरा बुझ-सा गया। छिपते सूर्य की लालिमा ने चारों ओर अपना साम्राज्य फैला दिया था। अस्त होते हुए सूर्य का चेहरा धीरे-धीरे स्याह पड़ रहा था और उसकी तपती हुई चमचमाती आग अब ठंडी पड़ चुकी थी। उसे लगा, वह भी तो एक डूबता हुआ सूर्य ही है। डूबता सूर्य हर दूसरे दिन वापिस उदय होता है, दूने वेग के साथ पर क्या एक बार बुझने के बाद उसका जीवन रूपी चिराग फिर कभी रोशनी कर सकेगा ? नहीं, कभी नहीं। वह ऐसा सूर्य है जो उमर-भर चमकता रहा व अपनी शक्ति व प्रकाश से इस छोटी-सी वाटिका के नन्हे-नन्हे पौधों को सींचता रहा, पालता रहा। पर आज वे पौधे घने वृक्ष बन चुके हैं। उन्हें अब इन अस्त होते सूर्य से कोई सरोकार नहीं।

सूर्य बिल्कुल डूब गया था। चारों ओर अंधेरा फैल गया। हवा में ठंडक बढ रही थी। पर उसे इस ठंड का एहसास नहीं हो रहा था। वह चुपचाप बैठा हुआ पता नहीं किन-किन ख्यालों में खोया हुआ था कि पत्नी के स्वर से चौंका :

"क्या सोच रहे हो जी, देखो न हवा कितनी सर्द होती जा रही है। आपको तो कुछ ख्याल ही नहीं अपना। कहीं ठण्ड लग गई तो•••।" और उसने अपने हाथ का कोट उसके आगे कर दिया।

अचानक दोनों की निगाह कोट में लगे पैबन्द पर अटककर रह गयी। वह देखकर भी अनदेखा कर गया। पर गायत्री से न रहा गया। झट बोल पडी, "कितनी बार कहा है कि ललन को लिख दो। एक अच्छा-सा कोट भेज दे। पर आपकी अक्ल तो अभी से सठिया गयी है। अपने हीपुत्र को लिखने में शरम खाते हो। देखो, हालत क्या हो गई है इस कोट की ?"

वह देखता रहा उस मा को जिसे अपने पुत्र से बड़ी उम्मीदें थीं, जिसकी आंखों पर ममता का अन्धा चश्मा चढा हुआ था। वह उसके

विश्वास को तोड़ना न चाहता था। वह बोला, "हां, गायत्री, तुम ठीक कहती हो, मैं कल ही•••।"

सरल हृदया गायत्री प्रसन्न हो गयी और कोई मधुर-सा गीत गुन-गुनाती हुई नीचे उतर गई।

काफी अरसे बाद आज विनोद का खत आया है। लिखा है, "सरकारी काम से इस इलाके मे आ रहा हूं। मेरे साथ और भी कई अफसर होंगे सो घर पर न ठहर पाऊंगा।" पत्र पढ़कर वह हक्का-बक्का रह गया पर जल्दी ही अपने-आप को सम्भाल लिया और खुशी का मूड बनाते हुए गायत्री को आवाज लगाई, "अरे सुनती हो गायत्री। देखो तो तुम्हारे बेटे का खत आया है।"

गीली लकड़ियों के हुए धुएं से उमड़े आंसुओ को पल्लू से पोंछती हुई गायत्री रसोई घर से बाहर आयी, "क्या कहा, ललन का खत है? कुछ आने-जाने का भी लिखा है कि बस यू ही।"

"कल आ रहा है, आपका सुपुत्र। चलो इसी खुशी मे कुछ हो जाय?"

"अजी हटो, खुशी क्या खाली मुझे ही होगी। आपका कुछ नही लगता?"

"क्यों नही? क्यों नहीं? हमारा भी तो राजा बेटा है।" वह असल बात को छुपा गया था। वह नहीं चाहता था कि एक मा के ममता-भरे दिल को ठेस पहुंचे।

सुबह से प्रतीक्षा करते-करते सांझ होने को आई पर विनोद नही आया तो गायत्री का धैर्य जवाब दे गया। वह बार-बार जिद करने लगी कि मुझे रेस्ट हाउस तक ले चलो पर वह उसे टाले रहा। आखिर वह समय भी आया जब विनोद की गाड़ी घर के आगे रुकी। मा फूली न समायी। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें चलती रही। गायत्री ने बड़े प्यार से व्यंजन बनाये थे, जो कभी उसके पुत्र को अत्यधिक रुचिकर थे। पर उसे क्या मालूम था कि अब उसके पुत्र की रुचियां बदल गयी है। मां-बेटों मे छोटे-छोटे गिले-शिकवे हो रहे थे। वह वहां से टल गया और बरामदे की आराम कुर्सी पर आ बैठा पर कान उसके अन्दर हो रहे

वार्तालाप में लगे थे। विनोद कह रहा था "मां, मुझे इस वक्त कुछ रुपयों की सख्त जरूरत है। पिताजी से दिलवा दो।"

"बेटा, यह तू क्या कह रहा है? तू तो इतना बड़ा अफसर है…।"

"हां मां, वह तो ठीक है, पर बड़े अफसरों के बड़े खर्च भी तो होते है। रेपुटेशन का सवाल है, मा।"

"पर बेटा, आज साल-भर होने को आया, तेरे पिता घर बैठे है।"

"पर मा, उन्हें कोई काम…।"

"अब इस उम्र में काम करवायेगा?"

"तो क्या हुआ? फौरन कण्ट्रीज में भी तो…?"

"खामोश रह विनोद, मुझे तुझसे इस तरह की उम्मीद न थी। तुम लोगों की खातिर उनकी आज यह हालत है कि उन्हें अपने कपड़ों पर पैवन्द लगाकर पहनना पड़ता है और तुम हो कि अपने स्टैण्डर्ड का रोना…।"

'मां, तुम समझती क्यों नही?"

"बस-बस, बहुत हो गया।" एकाएक वह आया और विनोद की ओर रोष-भरी दृष्टि डालते हुए बोल पड़ा।

विनोद मे इतना साहस न था कि वह अपने पिता से वाद-विवाद कर सके, सो काम का बहाना बनाकर चला गया। गायत्री फफक-फफक-कर रोने लगी।

वह उसे रोता हुआ न देख सका। उसका हृदय द्रवित हो गया। पर गायत्री के समक्ष रोकर वह अपने-आप को निर्बल घोषित न करना चाहता था, "उठो गायत्री, दिल छोटा न करो। जिसका गिरेबान खुद तार-तार हो उसके आगे अपने पैवन्दों का प्रदर्शन व्यर्थ है। जब तक मैं जिन्दा हूं तुम्हें किस बात की चिन्ता है, पगली कहीं की! मैंने तो पहले ही कहा था कि इतना बड़ा घर हम दोनों के किस काम का पर तुम न मानीं। अरी पगली, तेरा बेटा बड़ा अफसर हो गया है। अब उसे सरकारी बंगले रहने को मिलते हैं। भला तेरा यह साधारण-सा घर उसके किस काम का! मैंने निश्चय कर लिया है कि आधा मकान बेच-कर कोई बिजनेस करूंगा। मैं जानता हूं कि हम दोनों का बोझ औलाद के नाजुक कन्धे उठा न पायेंगे। कहीं ऐसा न हो कि सहारे के लिए मजबूत बैसाखियों की कल्पना करते-करते हम अपने कमजोर पैरों को बिल्कुल निकम्मा बना दें।"

टूटते सम्बन्ध, चीखता अस्तित्व

"सिस्टर !"

"यस सर !"

"वो, कॉटेज नम्बर फोर का पेशेण्ट है न, उसका विशेप ध्यान रखने की आवश्यकता है।"

"ओ० के० सर।"

"उसकी मानसिक स्थिति उतनी खराब नहो है, जितनी हम सोच रहे है, थोड़ी सतर्कता बरतने से हो सकता है, वह अपनी साधारण स्थिति मे आ जाए।"

"सर, ये वही है न ! डॉ० बत्रा के हसबैंड।"

"हां, मगर अपने-आप को अपनी पत्नी के नाम से जुड़ा हुआ बरदाश्त नहीं कर सकते।"

"वट वॉय ? ऐसा क्यों सर ?" नर्स ने विस्मय से कहा।

"उनका कहना है कि, उनका अपना एक पृथक् व्यक्तित्व है और उसी के आधार पर उन्हे जाना जाए। पत्नी के नाम से जाना जाने पर वे अपने-आप को निरा बौना एवं अस्तित्वहीन महसूसते हैं।"

"......"

"खैर, लेट अस सी। सम्भव है हमारा ट्रीटमेण्ट उन्हे कुछ लाभ पहुंचा सकें।"

"यस, सर।"

"अच्छा, तुम अब जा सकती हो।"

"ओ० के० सर !" नर्स कॉटेज नम्बर फोर की ओर चल दी।

अपने बेड पर शान्त भाव से लेटे हुए मि० बत्रा न जाने छत की

ओर टकटकी लगाए क्या सोच रहे थे। तभी किसी के कदमों की आहट पाकर उसी ओर देखने लगे। सफेद परिधान में सुसज्जित वार्ड नर्स हाथ में दवाई का गिलास थामे मुस्करा रही थी। एक पल को मि० वत्रा को अच्छा लगा, मगर देखते ही देखते उनके माथे पर विचित्र-सी सिकुड़न आई। वे बड़े रूखे स्वर मे लगभग चिल्लाते हुए बोले, "क्या है ?"

"दवा पी लीजिए।" नर्स ने बड़े शान्त भाव से कहा।

"नहीं, नहीं, तुझे कितनी बार कहा, मुझे कुछ नहीं पीना है।"

"लेकिन यह डॉक्टर का आदेश है, दवा आपको पीनी ही पड़ेगी।" नर्स ने बड़े शान्त भाव से मगर आदेशात्मक स्वर में कहा।

"डॉक्टर मुझे आदेश देने वाला होता कौन है ? क्या तुम्हें पता नहीं मैं किसी का आदेश नही मानता ?"

"अच्छा, अच्छा, मत पिओ। मगर बात क्या है ? तुम इतने खफा क्यों हो ?"

"मैं, तुम्हारी चिकनी-चुपड़ी बातों मे आने वाला नहीं। चली जाओ यहां से। मुझे ठगने की कोशिश मत करो। मैं तुम औरतों की चाल को अच्छी तरह समझ गया हूं।"

एक बार तो इला घबराई, पर फिर मरीज की हालत को देखते हुए, शान्त भाव से वहां से टल गई।

दूसरे दिन इला आई। चुपचाप मि० वत्रा का चार्ट देखा। दवा रखकर जाने को हुई कि उसके मन में एक विचार आया, क्यों न आज पुनः बात करके देख लिया जाए।

"आप कैसे हैं ?"

"क्या मतलब ?"

"आई मीन, आपकी तबीयत अब कैसी है ?"

"ठीक हूं।" मि० वत्रा काफी समय से इला को देख रहे थे। उसके शान्त भाव और सद्‌व्यवहार को देखकर मुस्करा दिए।

"मुझे यहां से छुट्टी कब मिलेगी ?"

"अभी तो काफी दिन लगेंगे। हां, यदि आप समय पर दवा लेते रहे तथा जूस पीते रहें, तो शायद जल्दी ही यहां से छुटकारा पा जायेंगे।"

"ठीक है, लाओ।" मि० बत्रा ने मौसमी के रस का भरा गिलास एक ही सांस मे समाप्त कर दिया। इला लौटने लगी तो मि० बत्रा ने बड़े धीमे स्वर मे कहा, "जा रही हो सिस्टर !"

"हां, क्यों, क्या बात है ?"

"जरा देर रुको तो, अकेले पड़े-पड़े मेरा तो दिमाग ही फटने लगता है !"

इला थोड़ी देर को रुक गई। बातचीत के दौरान इला पूछ ही बैठी :

"बत्रा साहब, लेडी डॉ० बत्रा जैसी योग्य पत्नी के होते हुए आपकी यह स्थिति…?" अभी बात पूरी भी न हो पाई थी कि मि० बत्रा एकाएक चिल्ला पड़े, "उस जहरीली नागिन का नाम न लो मेरे सामने। उसने तो मेरी जिन्दगी…।"

ओह ! मि० बत्रा ने एकाएक पुनः विकराल रूप धारण कर लिया। उनके चेहरे का तनाव बढ़ता जा रहा था। इला की समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या करे, जिससे रोगी को तनाव से मुक्ति मिल सके।

बाहर बरामदे मे किसी के तेज-तेज कदमों की आहट पाकर इला दरवाजे की ओर देखने लगी। डॉ० बत्रा के आते ही मरीज की हालत खराब हो गई। वे चिल्लाते हुए बोले, "इसे कह दो, चली जाय यहा से, यह नागिन है, नागिन, औरत के वेश मे एक खूबसूरत नागिन।"

डॉ० बत्रा निर्निमेष-सी उन्हें देखती रही। फिर, आखों की कोरों से बह आये आसुओं को पोछते हुए, तेजी से कॉटेज के बाहर हो गई।

मरीज मे जो सुधार थोड़ी देर पूर्व दिखाई दे रहा था, उसका नामोनिशान न था। तुरन्त ही मि० बत्रा को मार्फिया का इन्जेक्शन लगा दिया गया ताकि कुछ समय के लिए उनके मस्तिष्क को राहत मिल सके।

सुबह जब मि० बत्रा ने आख खोली, तो उन्हें अपनी तबीयत मे काफी सुधार महसूस हो रहा था। वे शान्त चित्त लेटे हुए छत की ओर टकटकी लगाये देखते रहे थे। न जाने कब अतीत उनके समक्ष मुखरित हो उठा।

पी० एम० टी० का रिजल्ट निकला, रचना सफल रही, पर यशपाल उत्तीर्ण न हो सका। फलस्वरूप रचना मेडिकल कॉलेज की छात्रा बन गई

और यशपाल को बी० एस-सी० की पढ़ाई करनी पड़ी। मगर इससे उनके मधुर सम्बन्धों में कोई फर्क नहीं पड़ा। वे दोनों उसी प्रकार एक दूसरे पर न्यौछावर होते रहे।

एक दिन दोनों ने कोर्ट मैरिज कर ली। जीवन की गाड़ी अच्छी तरह चलने लगी। समय बीतता रहा। वह दिन भी आया जब रचना एम० बी० बी० एस० की परीक्षा पास करके लेडी डॉक्टर के पद पर नियुक्त हो गई। यशपाल एक सीनियर टीचर से अधिक कुछ न बन सका।

समय ने करवट ली। रचना की कीर्ति चारों ओर फैलने लगी। रचना कार्य की अधिकता के कारण बहुत अधिक व्यस्त रहने लगी। रचना की बढ़ती हुई शोहरत ने यशपाल के मन मे हीनता की भावना भर दी। यशपाल रचना के साथ पार्टियों में जाने से कतराने लगा। रचना के आग्रह करने पर कोई न कोई बहाना बना देता।

समय के साथ रचना को शोहरत और दौलत दोनों की प्राप्ति हुई। रचना खुश थी, मगर यशपाल की हालत ठीक इससे विपरीत थी। यशपाल की तबीयत उखड़ी-उखड़ी-सी रहने लगी। यशपाल को रचना की हर बात मे अहम् की बू आने लगी थी। किसी तरह गृहस्थी की गाड़ी चल रही थी। इसी बीच उन्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। खुशियो के अम्बार लग गए मानो। यशपाल को जीने का सहारा मिल गया था। मगर हीनता की भावनाओं से कुंठित मन में ये खुशियां अधिक देर तक रास न आईं।

रचना अपने कार्यों की अपेक्षा अन्य कार्यों को तुच्छ समझती थी। यहां तक कि बच्चे के प्रति भी वह उदासीन ही रहती। घर के सभी कार्यों का भार प्रायः यशपाल पर ही आ पड़ा था। कहने को 'आया' थी, मगर नौकरों के भरोसे भी कही गृहस्थी की गाड़ी चल पाई है किसी की! घर के अन्य कार्यों के साथ-साथ बच्चे की देखभाल का कार्य भी प्रायः यशपाल को ही करना पड़ता था। उसके मन में एक विचार बिजली की मानिंद कौंध गया कि उसका व्यक्तित्व व अस्तित्व कहीं गहरे मे दफन हो गया है।

रोज-रोज की नोंक-झोंक ने घर का वातावरण अशान्त और कलह-पूर्ण कर दिया था। एक दिन उकताकर रचना ने यहां तक कह डाला, "अगर मुझे यह पता होता कि आप इस कदर झक्की और बोर हैं, तो मैं कभी···?" आगे के शब्द रचना के गले में अटककर रहे गये थे। यशपाल ने ही बात को पूरा करते हुए कहा, "तो क्या ? रुक क्यों गईं ? शादी न करती ! यही तो कहना चाह रही हो न तुम ! अभी कौन-सा बन्धन है, मेरी ओर से अब भी तुम आजाद हो।"

रचना का अधिक समय घर से बाहर बीतता। बच्चे की अच्छी तरह केयर न हो पाती थी। एक दिन यशपाल ने कह ही तो दिया, "रचना, अब जरा समय पर घर लौट आया करो। अब तुम एक बच्चे की मां हो। उसका भी तो कुछ ख्याल रखा करो।"

इतना सुनना था कि रचना का पारा सातवें आसमान पर जा चढ़ा। "तुम तो हर समय मेरे पीछे ही पड़े रहा करो। मैं कोई वहां रंगरेलियां मनाने थोड़े ही जाती हूं ? काम ही इतना अधिक···"

"काम ! काम ! काम !! एक ही रट, क्या अस्पताल में अन्य डॉक्टर नहीं है ? रचना, एक व्यक्ति के चलाये तो इतना बड़ा हॉस्पिटल नहीं चल रहा, फिर इन्सान को अपना, अपने परिवार के लिए भी तो कुछ सोचना चाहिए।"

"आखिर, तुम चाहते क्या हो यशपाल ?"

"तुम देखती नहीं, बबलू का स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा है। दो दिन से उसे टेम्प्रेचर है। मगर तुम्हें जरा भी ख्याल नहीं। पता नहीं तुम कैसी मां हो ?"

"हूं···! तुम ही कुछ दिन छुट्टी ले लो न ? तुम्हारे बिना कौन-सा स्कूल बन्द हो जायेगा ?" सुनकर यशपाल अवाक् रह गया था। उसका स्वाभिमान चीख उठा। यशपाल चिल्लाया, "रचना, खामोश हो जाओ, वरना···!"

उस दिन बबलू को कुछ ठण्ड का असर हो गया था। यह जानते-बूझते भी कि इस वक्त बबलू को मां की सख्त जरूरत है, रचना ड्यूटी पर जाने को तैयार हो गई।

"जा रही हो ?"

"हां, यशपाल, क्यों न जाऊं ? यह तुम्हें आजकल हो क्या गया है ? जरा-जरा-सी बातों को इतना तूल देते हो। अरे भई, मामूली-सा बुखार है, दवा दे दी है, ठीक हो जायेगा। मुझे भी तो चिन्ता है। मेरा बेटा नहीं है क्या ? मगर मजबूरी है। आज कोई आवश्यक मीटिंग है। अभी डॉ० वर्मा भी आते होंगे, मैंने उन्हें कह दिया था, 'मुझे अपनी कार मे लेते जाइयेगा।'"

उसी वक्त हॉर्न सुनाई पड़ा और रचना कुर्सी से अपना पर्स उठाकर जाते-जाते बोली, "देखो, डॉ० वर्मा आ गये। बड़े अच्छे हैं। किसी दिन मिलवाऊंगी आपको। अच्छा चलू, आप तो आज घर पर ही है न ? सण्डे जो है, बाई···।

रचना चली गई। यशपाल स्टैच्यू बना देखता ही रह गया, मौन-वेबस। यशपाल ने एक सर्द आह भरी और बुदबुदाकर रह गया, "रचना, तुम किस मिट्टी की बनी हो ? काश, तूने मेरा दर्द जाना होता !"

इधर बबलू की बीमारी बढ़ती रही, उधर रचना की अपने कुलीग डॉ० वर्मा से दोस्ती बढ़ती रही। फलस्वरूप बच्चे ने इस नाटकीय जीवन से मुक्ति पा ली। यशपाल निरा अकेला रह गया, अस्तित्वहीन-सा। ठीक ही तो है। यशपाल का अस्तित्व पत्नी को पोस्ट व डिग्रियों तले दबकर कहीं लुप्त हो गया था। हर कोई यशपाल को डॉ० बत्रा के हजबैण्ड के नाम से पहचानता था। पत्नी को मिले सरकारी फ्लैट में रिहायश के कारण उसकी रही-सही पहचान समाप्त हो गई थी।

धीरे-धीरे आपसी सम्बन्ध बिगड़ते गए। मात्र औपचारिकता के सहारे जिन्दगी घिसट रही थी। अब रचना बिलकुल आजाद थी। बबलू के बाद उस पर तो नाममात्र की भी जिम्मेवारी न रही थी। रोज-रोज आवश्यक कार्य होने लगे। डॉ० वर्मा की गाड़ी दोनों वक्त लेने-पहुंचाने आने लगी। क्योंकि अपनी गाड़ी तो गैरेज मे लॉक थी। कोई अच्छा शोफर न मिल रहा था और रचना को ड्राइविंग आती न थी। यशपाल तो खैर पहले चलाता ही था, मगर इधर काफी अरसे से उसने

गाड़ी ड्राइव करने की कसम खा ली थी।

एक दिन जब वे लोग किसी पार्टी में गए थे तो कार से उतरते ही रचना ने बिना सोचे-समझे बात फेंक दी थी, जिसे सुनकर आसपास मौजूद व्यक्तियों ने मुस्कराकर मुंह फेर लिया था।

"यशपाल, सच, तुम रहे तो अनाड़ी के अनाड़ी ही।"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"देखते नही गाड़ी को इतना सटाकर खड़ा किया है कि करीब से निकलती गाड़ी से रगड़ खाते-खाते बची है। खरोंच पड़ी तो गाड़ी का सारा शो बिगड़ जायेगा।"

"......"

"केवल, चीज लेने से क्या होता है, प्रयोग मे लाना भी तो आना चाहिए।"

यशपाल के स्वाभिमान को गहरा धक्का लगा। मगर वह खामोश रहा। काश, रचना ने उसके दिल पर पड़ी खरोंच को देखा होता, जो अब तक पककर नासूर बन गई है।

एक शाम रचना ने लौटने में काफी देर कर दी। आकाश मे बादल घिर आए थे। हवा बन्द थी! बड़ी गर्मी पड़ रही थी। यशपाल का मन मैगजीन मे न लगा। उठकर छत पर खुले में निकल आया।

कुछ देर चहलकदमी के बाद यशपाल गैलरी में खड़ा हो गया। रात घिर आई थी। एक कार आई और गली के मोड़ पर रुक गई। दूर तक फैली बिजली की रोशनी में दो साये आलिंगनबद्ध हुए और तुरन्त ही अलग हो गए। रचना और डा० वर्मा। यशपाल की मुट्ठियां बंध गई। वह गुस्से से कांपने लगा।

बेल हुई। रचना आ गई थी। मेड सर्वेण्ट ने दरवाजा खोल दिया था। रचना अपने-आप मे मस्त थी। उसे अब किसी मे कोई दिलचस्पी न थी।

यशपाल बहुत कुछ कहना चाहता था, मगर कह न पाया। यशपाल का दम घुटने लगा। उसके परिवार की बरबादी का कारण रचना ही तो थी।

सहसा मि० बत्रा चीख उठे, "पकड़ो, पकड़ो। यह मेरे बच्चे की हत्यारिन है! वह डायन है डायन! वह···वह मुझे भी मारना चाहती है!" मि० बत्रा इधर-उधर पलंग पर पड़े-पड़े टक्करें मारने लगे। उनकी हालत गम्भीर हो गई। विक्षिप्तावस्था में वह कुछ-न-कुछ बोलते हुए अपने-आप को मारने लगे। अचानक उनके मुंह से रक्त की धारा बह निकली।

वार्ड नर्स ने डॉ० मिश्रा को सूचित कर दिया था। मरीज की हालत को देखते हुए डॉ० मिश्रा ने मिसेज बत्रा को फोन द्वारा सूचित करना बेहतर समझा।

"हैलो।"

"हैलो, आप कौन बोल रहे हैं?"

"डॉ० मिश्रा स्पीकिंग।"

"ओ···! कहिए डॉक्टर साहब, खैरियत तो है?"

"कम इमीजियेटली मिसेज बत्रा, मि० बत्रा की हालत गम्भीर है।"

"ओ०के०, मगर डॉक्टर साहब, आप तो जानते ही हैं मेरे आने से वे अधिक अस्वस्थ हो जाते हैं। खैर, आई एम जस्ट कमिंग।"

डॉ० वर्मा के साथ जब मिसेज बत्रा ने कॉटेज नम्बर फोर में कदम रखा तो यशपाल दम तोड चुका था। उसके चेहरे पर अपूर्व शान्ति का आभास हो रहा था। दिमाग की नस फट जाने से अचानक ही उसकी मृत्यु हो गई थी।

फिर वही शाम

दस साल बाद जब वापिस अपने शहर लौटा है तो बड़ा अजीब-सा लग रहा है। *कितना परिवर्तन हो गया है, इन दस वर्षों में। सभी कुछ* तो बदला-बदला-सा लग रहा है। प्लेटफार्म का स्वरूप, सड़कें, बाजार। यहां तक कि नये चेहरे। चारों ओर इस लिहाज से नजर दौड़ाई कि शायद कोई परिचित नजर जाए, पर निराशा ही हाथ लगी। लगे क्यों न, *दस साल का समय कुछ कम थोड़े ही है।*

स्टेशन वाली सड़क पर से जब इक्का गुजर रहा है तो कुछ-कुछ पहचानने लगा हूं। कई नये मकान बन चुके हैं, पर बीच-बीच में वही पुराने मकान समय की गति से बेखबर तटस्थ खड़े हैं। अचानक हमारा इक्का *एक ऐसे मोड़ से गुजरता है कि मुझे एक झटका-सा लगता है।* वही सफेद मकान और सामने पलाश का पेड़। ठीक उसी तरह पेड़ के नीचे बिखरे पलाश के लाल केसरिया फूल, निर्विकार भाव से मौन पड़े हैं, मानो किसी ने नीचे गलीचा बिछा दिया है। पर मकान की खस्ता हो चली हालत के बावजूद साफ मालूम पड़ रहा था कि इमारत कभी बुलन्द थी। अचानक किसी शायर का यह शेर मेरे जेहन मे आ गया है, 'खंडहर बता रहे है इमारत बुलन्द थी।'

जर्जर मकान को देखकर मन न जाने किन गुफाओं में खो गया एकदम पीछे। दिमाग २० वर्ष पीछे की घटनाओं मे उलझ गया पर निगाहे मुड़-मुड़कर उस इमारत को देख रही थी, मानो उन टूटे प्लास्टर वाली दीवारों को बीधकर भीतर का सब कुछ पा जायेंगी। पत्नी ने टोका भी "आप ऐसे मुड़-मुड़कर क्या देख रहे है?" मैं फीकी-सी हंसी हंसकर टाल देता हूं, "कुछ भी तो नही। भई, कई बरस बाद आए हैं। सब कुछ

बदला-सा लग रहा है। पहचानने की कोशिश कर रहा हू।" पत्नी के चेहरे पर आए झुंझलाहट और कौतूहल के भाव छूमन्तर हो गए। वह मुस्करा दी।

मैंने उसकी ओर नजर-भर देखा। चेहरे पर सन्तुष्टि के भाव थे। मुझे राहत मिली। वर्ना तो अभी ही सब कुछ बताना पड़ता। पत्नी का कौतूहल मामूली था। शान्त हो गया। पर अपने दिल में उभरे विभिन्न प्रश्नों ने अन्तर में ज्वार-सा ला दिया था। उसे शान्त करने में मुझे बड़ी कठिनाई हो रही थी। अपने मन की बेचैनी पर काबू पाते ही सहज हो गया और पत्नी से इधर-उधर की बातें करने में लग गया। बातों ही बातों में घर आ गया। बरसों से पड़ा ताला खोलकर ज्योंही किवाड़ भीतर को ठेले, मकड़ी के बनाये जालों का ढेर दिखाई दिया। मकान में काफी गन्दगी थी। एकाएक भीतर जाने को मन ही नही हुआ।

इक्के से सामान उतरवाकर इधर-उधर नजर दौड़ाई तो पाया, पड़ोस के घर से दो नन्हे-नन्हे बालक झांक रहे थे। मैं उनकी ओर देख मुस्करा-भर दिया। बालक भागकर अपने कमरे मे घुस गए। सोचा, घर में जाकर अपनी मा को सूचना देने गये है। जैसे सोचा था वही हुआ। अगले ही क्षण एक प्रौढ़ा अपने सिर पर आंचल ठीक करते हुए नजदीक आई और सलाम के बाद मुस्कराकर बोली, "अरे आकाश, पहचाना नहीं क्या? यूं खड़े-खड़े क्या देख रहे हो? भीतर आओ न, तुम भी आओ बहू।" वह एकदम से इतनी जल्दी बोल गई कि मुझे कुछ कहने का मौका ही न मिला। बस, केवल मुस्करा-भर दिया। कुछ ही देर में ध्यान आया, ये तो तारा भाभी हैं। मैंने आगे बढ़कर उनका चरण स्पर्श किया और पत्नी ने भी मेरा अनुसरण किया। वहां का माहौल देखकर पत्नी ने भी अपना आंचल ठीक कर लिया था।

तारा भाभी ने बड़ी आवभगत की। अपनी आदत के अनुसार वे बराबर बोलती जा रही थी। "इतने-इतने साल तक कभी आकर सम्हालते नहीं। बाऊजी के बाद तो मानो अपने शहर से सम्बन्ध ही तोड लिया, वर्ना तो भला कोई दस-दस बरस तक घर नहीं सम्हालता! क्या हालत बना रखी है घर की। पहले लिख दिया होता तो पहले से

नौकरानी को कहला भेजती, खैर···।"

नन्हे-मुन्नों ने अब तक हमें घेर लिया था। पत्नी खुश थी। मैं भी उसे खुश देखकर खुश था और कनखियों से उसके खिले हुए चेहरे को देखकर आनन्द ले रहा था। उसका खुशी होना भी स्वाभाविक था, पर खुशी के साथ-साथ एक पीड़ा तथा लालसा-भरा भाव उसकी आंखों में तैरता हुआ मुझे साफ नजर आ रहा था। होता भी क्यूं न, लगभग बारह वर्ष के वैवाहिक जीवन में मैं, उसे सन्तान का मुख न दे सका। इसी कारण हमारे हरे-भरे संसार में भी कहीं रेगिस्तान की खामोशियां उतर आयी थी जो मन को बेचैन कर देती थी। मैं अपने-आप को पत्नी के समक्ष दोषी महसूसने लगता था। यद्यपि उसने मुझे इस बात के लिए कभी चितारा नहीं फिर भी उसकी खामोश निगाहों में तैरती उदासी की परछाईं दिल की गहराई में सोई हुई ममता को मेरे सम्मुख ला देती है। लाख उपचारों के बावजूद मैं विफल रहा।

इसी उधेड़-बुन में बैठा था कि तारा भाभी ने आकर कहा, "अरे आकाश, किस सोच में पड़ गए भाई। चलो सफाई हो गई है तथा सामान रखवाना है सो चलकर बहू का हाथ बंटाओ। बाहर बरामदे, बैठक व सहन की सफाई हो चुकी है। बाकी कल देखा जाएगा।"

मैं जैसे नींद से चौंका, "हां-हां, चलिए, बाकी सब धीरे-धीरे होता रहेगा।"

अब रात हो गई थी। खाना-पीना आज तारा भाभी के यहां ही हुआ था। सब लोग बहुत अच्छे हैं। पत्नी को भी उन सबका स्वभाव बेहद पसन्द आया है। वैसे भी वह मिलनसार है, सबसे निभा लेती है। नींद नहीं आ रही है। करवटें बदल रहा हूं। घर की प्रत्येक वस्तु मां व पिताजी की याद दिला रही थी। हर जगह, हर वस्तु उनके साथ जुड़ी हुई थी। ऐसा लग रहा है, आज भी वे दोनों यहीं कहीं हैं। सामने मां का बड़ा तैलचित्र दीवार पर लगा हुआ है। उसी की बगल में पिताजी का उसी साइज का चित्र टंगा है। लगता है अभी बोल उठेंगे, ये होंठ। वैसे मां व पिताजी को मैंने बहुत कम ही बतियाते सुना था। पिताजी का दबदबा सारे घर पर था, वे बड़े रोब-दाब वाले थे। सारे घर पर

उन्होंकी हुकूमत थी। मजाल है जो उनकी इच्छा के विना पत्ता भी हिल जाए। पैसे का कभी इस घर में अभाव नहीं देखा गया था। मेरा मन अतीत के घेरों में उलझता जा रहा था। पास के पलंग पर पत्नी सब बातों से बेखबर खर्राटे मार रही थी, लम्बे सफर की थकान जो थी। कुछ देर उसके चेहरे को देखता रहता हूं, अच्छा लगता है। मैं कभी अपनी पत्नी पर खफा नहीं होता। चाहे कुछ भी हो, भविष्य में भी ऐसा ही करूंगा। यह प्रण मैंने तय किया था जब मैं करीब अट्ठारह साल का था।

एक दिन मेरी आंख रात को खुली तो पाया, मां बगल वाले कमरे में बैठी सुबक रही है। मेरी समझ में कुछ नहीं आया कि मैं क्या करूं। क्या करना चाहिए मुझे, अन्दर पिताजी होंगे तो उनकी क्रोधाग्नि का शिकार होना पड़ेगा। कुछ देर तक दम साधे पड़ा रहा पर सब बेकार, मां की सिसकियों के अलावा कुछ भी सुनाई नहीं दिया। मैं उठा और धीरे से मां के कमरे के भिड़े किवाड़ों में से भीतर झांकने की कोशिश करने लगा। मेरे पांव कांप रहे थे, डर लग रहा था कहीं किसी ने देख लिया तो नाहक फजीता होगा। पर कमरे में अकेली मां को पलंग पर औंधे मुह लेटे हुए देखकर साहस बढ़ा, सोचा, पिताजी कहां गए ? क्या वे आज कोर्ट से लौटे नहीं ? नहीं-नहीं वहां से तो शाम को ही लौट आते हैं। तो फिर इस वक्त कहां गए होंगे ? मां क्यूं रो रही है ? मेरे मन की बेचैनी बढ़ने लगी। दबे पांव भीतर गया पर मां को मेरे पैरों की आहट मिल गई थी, वे तुरन्त पलंग से उठ खड़ी हुई। और घबराकर बोली, "क्या हुआ बेटा ? यहां कैसे आए ? तबीयत तो ठीक है ?"

मैं खामोश खडा रहा मानो कोई बहुत बडा जुर्म मेरे से हो गया हो। पर अब मैं अपने में शक्ति का अनुभव कर रहा था। हिम्मत कर बोला, "मां, तुम रो क्यों रही हो ? पिताजी कहां गए हैं ? इतनी रात गए तुम्हें कमरे में अकेले बैठी रोती पाया सो चला आया। क्या हुआ मां, बताओ न, तुम्हें मेरी कसम।" मां ने होंठों पर अपना हाथ रख दिया, "नहीं बेटा, ऐसा नहीं कहते। मैं रो रही हूं ये तुझे किसने कहा, भला मैं क्यूं रोऊंगी ?" मां के होंठ हंस रहे थे और आंखों से आंसू झर रहे

थे। मुंह से एकदम भराई हुई आवाज निकली, "जा, जाकर सो जा, सुबह जल्दी उठना है। देर तक जागेगा तो समय पर कालेज कैसे पहुंचेगा?"

मेरे पूछने पर कि पिताजी कहा गये वे टाल गईं, "बड़े अफसर हैं उन्हें बहुत काम रहता है। आ जाएगे। तू जा और सो जा।"

मैं उल्टे पैर वापिस आ गया। मैं आज मां को कुरेदकर और अधिक दुखी करना नही चाहता था। कुछ भी हो, मैं इतना अवश्य समझ गया था कि मा और पिताजी के सम्बन्धो मे कही अलगाव अवश्य है। उस दिन के बाद मैं सतर्क रहने लगा। पिताजी की गतिविधियो पर मेरा ध्यान लगा रहता था। मैं प्रायः मा को रात-रात-भर करवटे बदलते व सिसकियां भरते देखता। एक दिन मैं यह निश्चय कर कि आज सारे मामले का पता लगाना है जागता रहा। अपनी चारपाई पर चुपचाप सोते रहने का बहाना कर लेटा रहा।

अपनी आदत के मुताबिक पिताजी जाने लगे तो मां ने विरोध किया। फलस्वरूप काफी देर तक झगडा चलता रहा पर परिणाम वही ढाक के तीन पात। पिताजी ने एक जोरदार चाटा मां के मुंह पर दे मारा। मां तिलमिला उठी। मेरी रगों का खून जोश मारने लगा पर पिताजी की कडकती आवाज ने मेरी रगों के खून को जमा दिया। मैं हिला न डुला पर एक निश्चय मेरे मन ने तुरन्त किया और मैं उठकर छिपता-छिपाता पिताजी का पीछा करने लगा।

कुछ ही देर में वे एक छोटे-से सफेदी पुते मकान के सामने खडे थे व धीरे से भिड़के हुए किवाड़ पर दस्तक देने लगे। मैं दबे पांव मकान के सामने लगे पलाश के पेड़ के तने से सटकर खडा हो गया जिससे किसी की भी निगाह मुझ तक न पड़े। मुझे आज भी वह दिन याद है। इतनी कड़ाके की सर्दी के बावजुद मैं पसीना-पसीना हो रहा था।

दरवाजा खुला। एक निहायत खूबसूरत औरत ने बढ़कर पिता का स्वागत किया। मेरी आंखें फटी की फटी रह ग[illegible] नीरज की बात याद हो आई जब उसने कहा था कि "[illegible] है।" उसने उन्हें काजल बाई के घर

मुझे उसकी बात पर इतना गुस्सा आया कि एक तमतमाता हुआ तमाचा उसके गाल पर रसीद कर दिया और ऊपर से दो-चार गालियां तथा मुक्के और बरसाये। वो तो बेचारा सीधा था। बोला कुछ नही। वहां से यह कहता हुआ भाग निकला, "सचाई एक न एक दिन सामने आएगी।" मेरा मन आत्मग्लानि से भर आया था, मैंने नाहक ही उस बेचारे की ठुकाई कर दी थी।

पिताजी की इन हरकतों को देखकर मेरे मन मे नफरत पैदा हो गई। पिताजी के प्रति जितनी घृणा पैदा हो रही थी मां के प्रति उतनी ही हमदर्दी और प्यार; मैंने निश्चय कर लिया कि इसका कुछ न कुछ उपाय करना ही पड़ेगा। वर्ना बड़ी बदनामी होगी।

अगले दिन मैं दोपहर के समय पलाश के पेड़ के नीचे अपनी साइकिल खड़ी कर उसी सफेद मकान के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ। पर पता नही क्यो मुझे डर लग रहा था। मैंने जल्दी से दरवाजा खट-खटाया। मैं जल्दी से उस मकान मे प्रवेश पा जाना चाहता था, मैं नही चाहता था कि कोई मुझे देखे। मेरी मनोकामना पूर्ण हुई। रात्रि वाली वही औरत आई और दरवाजा खोल दिया। वह प्रश्नवाचक निगाह से मुझे देखने लगी। मैंने झिझकते हुए सिर्फ इतना ही कहा, "मुझे आपसे कुछ जरूरी काम है।"

वह हंसी और उसने मेरे लिए रास्ता छोड़ दिया। उसकी यह हंसी और सूरत को देखकर मुझे उबकाई-सी आने लगी। रात को जो औरत बिजली की रोशनी में इतनी खूबसूरत लगी थी दिन के उजाले में वह इतनी कुरूप व भद्दी लग सकती है, मैंने कभी कल्पना भी न की थी।

उसने मुझे अदब से बैठाया व आने का मकसद पूछा। मेरे बताने पर कि मैं किसका पुत्र हू वह सकपकायी और बोली, "तुम्हें यहां नही आना चाहिए था। अगर तुम लोग चाहते हो कि तुम्हारे पिता यहा न आवें तो उन्ही को मना करो। मैं उन्हें बुलाने नही जाती। यह तो दुकानदारी है। कोई भला अपने ग्राहक को लौटाता है। हमारा तो यही धन्धा है। धन्धा छोड़ देंगे तो खायेंगे क्या?"

कुछ देर मैं हैरान होते हुए उसका मुंह देखता रहा। फिर उसे

अपनी मां के दुखी होने की बात बता कर बोला, "क्या तुम चाहती हो तुम्हारे धन्धे की वजह से एक औरत तिल-तिलकर जलती रहे? तुम भी एक औरत हो। औरत होकर औरत का दर्द नहीं जानती? बड़े शर्म की बात है। तुम अपनी बच्ची को भी यह सिखा रही हो। तुम्हें देखकर ही तो तुम्हारी लड़की सब कुछ सीख पायेगी। एक तुम हो और एक हमारी मां है, जो इतना सब झेलते हुए भी अपनी जबान नहीं खोलती तथा पति के कुकर्मों पर पर्दा डालती रहती है ताकि हम लोग भी बिगड़ न जायें, उन्हें हमारे कैरियर का इतना ख्याल है। क्या तुम्हारे सीने में मां का दिल नहीं? मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूं काजल बाई। यह सब छोड़ दो और अपनी बच्ची का जीवन बनाओ।"

वह पास ही सोई बच्ची को देखती रही। उसकी आंखें नम हो आईं पर फिर एक साथ तीन भाव—घृणा, क्रोध तथा प्रतिशोध उसके चेहरे पर उभरे और वह कड़कती हुई आवाज मे बोली, "निकल जाओ यहां से! फिर कभी इधर आने की कोशिश मत करना, अभी तुम बच्चे हो, इन बातों को क्या जानो।"

मैं जल्दी से लौट पड़ा और साइकिल उठाकर तेजी से एक ओर को निकल पड़ा, रात देर से घर को लौटा। पिताजी घर पर न थे। मैं समझ गया वे कहां होंगे। आंगन मे ही मां से सामना हो गया। पर मां ने कुछ कहा नहीं। हमेशा तो देर से लौटने पर नाराज होती है। मैं नीची निगाहें किए चुपचाप अपने कमरे की ओर चल दिया।

अगले दिन कालेज से लौटा तो पिताजी घर पर ही थे और मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मां ने आते ही सूचित किया कि पिताजी बाहर बैठक मे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जानकर मेरा माथा ठनका। समझते देर न लगी कि अवश्य काजल ने उनके कान भरे होंगे। पहले तो डरा, पर फिर न मालूम क्या हुआ कि मेरा आत्मबल जाग पड़ा। मन में एक विचार आया, मैंने कोई अपराध नहीं किया, जब गलत काम ही नहीं किया तो सजा कैसी?

अभी पर्दा उठाकर बैठक में घुसा ही था कि आदतन पिताजी ने कड़कती आवाज में कहा, "कहो बरखुरदार, कल कहां गये थे...?" मैं

चुप। निगाहें अपने-आप झुक गईं। "अब तो जनाब तवायफों के कोठों का पता भी पा गए! किसने भेजा था तुम्हें वहां? भविष्य में उधर जाते देखा तो मुझसे बुरा कोई न होगा, समझे!" मैं चुप था। "अबे, बोलता क्यों नहीं?"

पता नहीं उस वक्त एकाएक इतनी शक्ति मुझमे कैसे आई कि मेरी झुकी हुई पलकें ऊपर उठ गईं।

"मैं मां को दुखी नहीं देख सकता।"

"अच्छा तो वहां पर तुम्हारी मा के दुख का इलाज हो रहा था?" और उन्होंने एक थप्पड़ रसीद कर दिया, ज्योंही दूसरा तमाचा जड़ने को हुए, मैंने उनका हाथ पकड़ लिया था। मेरे हाथ की मजबूत पकड़ से न मालूम उन्हे कैसा महसूस हुआ कि उन्होंने अपने हाथ का कसाव ढीला कर दिया और दो-चार गालियां बरसाते हुए बाहर निकल गए।

मेरी आंखों से आसुओं की बरसात होने लगी। मा ने सब सुन लिया था, आकर मेरे बालों को सहलाते हुए, रोनी आवाज में बोली, "बेटा, क्यों परेशान होता है? पिता से झझट नहीं करते। अपने-आप सुधर जायेंगे।"

उस दिन के बाद मेरा अपना सामना पिताजी से कम ही होता था। कभी मिलते तो सीमित वार्तालाप होता था।

इधर काफी दिन से पिताजी समय पर घर आने लगे थे और फिर बाहर नहीं जाते थे, अपने कमरे में बैठे पुस्तकें पढ़ते रहते थे।

घर का ढर्रा ठीक से चल रहा था। एक दिन मालूम हुआ कि काजल ने ही पिताजी से सम्बन्ध तोड़ लिए हैं। यह अप्रत्याशित परिवर्तन देखकर मेरा मन आत्म-विभोर हो उठा, दिल हुआ अभी ही जाकर उसका शुक्रिया अदा करूं। पर, पिताजी के डर के कारण मन मारकर रह गया। कहीं बनी बात बिगड़ न जाय।

अब मा को मैंने कभी रोते न देखा था। यद्यपि पिताजी वहां नहीं जाते थे फिर भी मां के साथ उनका व्यवहार कोई विशेष अच्छा न था। पर मा इसमें भी सन्तुष्ट थी। मा ऊपर से खुश थी पर अन्दर ही अन्दर घुली जा रही थी। चिन्ता ने उसे खोखला कर दिया था और एक दिन

अन्दर ही अन्दर बनने वाला नासूर कैंसर का रूप ले बैठा। इससे पिताजी को भारी आघात पहुंचा। वे अब बड़े चिन्तित रहने लगे। चौबीसों घण्टे मां के पास बने रहते।

एक दिन रात को पिताजी मा के पास बैठे बतिया रहे थे कि अचानक रोने लगे। मैंने अपनी जिन्दगी में कभी उन्हें रोना तो दूर, किसी से नर्मी से बतियाते भी नही देखा था। देखकर दंग रह गया। पिताजी मा से अपने गुनाहों की क्षमा माग रहे थे।

मां को जाना था, चली गई। सारा घर वीरान हो गया। मैंने उन्हीं दिनों प्रण कर लिया था, विवाह नही करूंगा और करूंगा तो कभी पत्नी को दुःख नही दूंगा।

घर वीरान था, भला औरत बिना कैसा घर?

पिताजी व अन्य रिश्तेदार मेरे विवाह की चर्चा करने लगे, पर मैंने पूर्ण निश्चय कर लिया था कि जब तक मैं अपने पैरों पर खड़ा न हो जाऊं, विवाह नही करूंगा। पिता ने लाख चाहा, पर मेरा निश्चय भी अटल था। शायद पिताजी की यह साध पूर्ण नहीं होनी थी, न हुई। एक दिन पिताजी भी मां के पीछे मुझे अकेला छोड़ चल बसे।

पिताजी को गुजरे कुछ ही अरसा हुआ था कि मुझे नौकरी मिल गई, तथा रिश्तेदार विवाह के लिए तंग करने लगे।

शादी के तुरन्त बाद ही मेरा तबादला कलकत्ता हो गया सो हम लोग कलकत्ता रहने लगे। ओह, कितने साल बीत गए पर कल की-सी बात लगती है! काजल की याद फिर हो आई। अब तो काफी बूढ़ी हो गई होगी। शायद मर गई हो, कौन जाने? हां, उसकी बेटी का क्या हुआ होगा? हो सकता है किसी कोठे पर…नहीं…नहीं मैं ऐसा क्यों सोचूं? अब तो सरकार ने ये सब बन्द ही करवा दिया है।

गला सूख रहा था। सुराही से पानी पीने लगता हूं। पत्नी की आंख खुली। वह हड़बड़ाकर उठ गई है, "क्या बात है आप अभी तक सोए नहीं? काफी रात बीत गई है। कितने बजे होंगे?"

मैं मुस्करा देता हूं, "शायद दो बजे हैं।"

"ओह सो जाओ। दो रातों की नींद है। इतना लम्बा सफर करके

आए हो। फिर भी अब तक जगे हो। आओ, सो जाओ।" मेरा हाथ पकड़कर अपने पलंग पर खींच लेती है। मैं अतीत के घेरों से निकल वर्तमान को जीने लगता हूं।

कुछ दिन आने-जाने वालों का चक्कर रहा। किसी को पहचान पाया, किसी को नहीं, पर सब मुझे पहचान गए थे, वैसे नहीं तो पिता जी के नाम की वजह से ही सही, पर इतना व्यस्त रहा कि काजल का पता ही न लग सका।

आज बाजार जा रहा था कि, रास्ते में काजल का मकान देखा, दिल न माना, पर कुछ झिझक-सी लगी। पलाश के पेड के नीचे खड़ा होकर सामने की खिड़की से देखने लगा। हवा तेज चल रही थी, पलाश के फूल आहिस्ता-आहिस्ता बरस रहे थे, बड़ा अच्छा लग रहा था कि अचानक खिड़की में एक सलोना-सा चेहरा दिखाई दिया और लुप्त हो गया। मुझे अपने आने का मकसद याद हो आया। शीघ्र ही दरवाजे पर जाकर दस्तक दी। दो मिनट की प्रतीक्षा के बाद अन्दर चूड़ियों की खनखनाहट हुई, शायद वही लड़की दरवाजा खोलने आई थी, क्योंकि जर्जर कपाटों की दरारों में से मृगी-से दो काले-काले नयन झांकते-से लग रहे थे।

कुछ ही पलों में दरवाजा खुला और एक प्रश्न-भरी निगाह ऊपर उठी। "मुझे काजल बाई से मिलना है। क्या वे···" मैं अभी पूरा बोल भी न पाया था कि भीतर से आवाज आई, "कौन है बेटी ?"

लड़की ने कोई जवाब नहीं दिया और मुझे अपने पीछे आने का इशारा कर आगे चलने लगी।

काजल बीमार थी, काफी बुढा गई थी पर मुझे पहचान गई। पहचानते ही बोली, "आओ बेटा, बैठो। खडी-खडी क्या देख रही है, री बेला ! ला बेटी, अन्दर से पीढ़ा उठा ला।"

इधर-उधर की बातों के बाद वे शायद पिताजी को याद करने के बहाने से बोली, "तू तो बिल्कुल अपने बाप पर गया है रे।" शायद उसको इन बातों से बडा सुकून मिल रहा था। मैं मुस्कराता रहा।

मैं उठने को हुआ तो उसने बताया कि किस तरह से उसने धन्धे

को बन्द करने के बाद अपना गुजर-बसर किया। इस दौरान सरकार ने धन्धा बंद कर दिया। फिर अपने-आप ही हंसकर बोली, "धन्धा तो क्या बन्द हुआ है। ढंग बदल गए है रे, बड़े-बडे होटलो में लड़कियां सप्लाई होतो है। नाम बदला है। कुछ तो कहते है, मुआ याद ही नही आता, हा, याद आया, 'कॉल गर्ल'।"

बेला चाय बना लाई थी। अब मैं वहा से टलना चाहता था पर उनका स्नेह देखकर लाचार हो गया। अनिच्छापूर्वक ही दो घूंट गले मे उतारने पड़े। दिल की धड़कन तेज थी, कही कोई परिचित आते-जाते देख लेगा तो बड़ा फजीता होगा, बदनाम हो जाऊंगा। और हो सकता है गृहस्थ जीवन मे कोई गलतफहमी पैदा हो जाए और नाहक मुसीबत खड़ी हो जाए। बडी मुश्किल से जान छुड़ाकर भागा। आते-आते फिर काजल ने टोका, "बेटा, बेला का ख्याल रखना। किसी अच्छे लड़के के साथ इसके हाथ पीले कर दू तो चैन की नीद सोऊ।" मैं बिना सोचे-समझे आश्वासन देकर चला आया हूं।

घर आया तो पत्नी चिन्तित थी, काफी देर जो लगा दी थी। बिना कुछ छिपाए उसे सारा किस्सा सुना देता हू। वह मुस्कराती रही। मामूली-सी शिकन भी उसके माथे पर नही आई। मैं सोचता हूं, कितनी *विशाल हृदय वाली है ! वर्ना तो कोई भी औरत***।

काजल आए दिन घर की ओर आ जाती है। बेला के विवाह की चिन्ता है उसे***लड़की खूबसूरत है। पर***भला कोई तवायफ की***। विभिन्न पत्रिकाओं में वैवाहिक विज्ञापन देख-देख लाती है और मुझसे पत्र लिखवाती है। पर कोई जवाब नहीं आता। अब लगता है उसके मन में मेरे प्रति जो आस्था थी वह टूटती जा रही है।

धीरे-धीरे उसने आना बन्द कर दिया है। मैंने चैन की सांस ली है। लगता है उन्होंने किसी दूसरे का पल्ला पकड़ा है। सोचता हूं कही धोखा न खा जाए; सभी तो मेरी तरह नही होते। जवान लड़की है, उस पर खूबसूरती कयामत ढा रही है। कुछ चिन्तित होने लगता हूं। पर क्यों —मुझे क्या है? मैंने कोई ठेका तो ले नही रखा? माथा झटककर उठ बैठता हूं।

छुट्टियां खत्म हो गई थीं, लौटने के लिए सामान बांधने लगे थे। पड़ोसी रिश्तेदार सभी बारी-बारी से मिलने आने लगे थे। ट्रेन जाने में सिर्फ चार घंटे शेष थे। अचानक काजल का ध्यान आया। सोचता हू, जाते-जाते मिल आऊं। पिता के साथ सम्बन्ध होने के कारण जो काजल से मेल हुआ तो वह भी अतीत की जंजीरों की एक कड़ी बनकर रह गई। लाख भुलाऊं घर, मां और पिताजी की याद के साथ जबरन ही उसका चेहरा आंखों के समक्ष घूमने लगता है। पैर अपने-आप ही उसके घर की ओर उठ गए। पर यह क्या, काजल ने वह घर किसी बनिये के हाथ बेच दिया और न मालूम अपनी बेटी को लेकर कहां चली गई।

कलकत्ता आकर जिस दिन ड्यूटी ज्वायन की उसी दिन चीफ साहब आ धमके। उनकी आवभगत अब मेरे जिम्मे थी। रात्रि का डीनर पैराडाइज मे था, सो ठीक समय पर हम लोग पैराडाइज पहुंचे। डिनर के बाद चीफ साहब ने पैराडइज में ही नाइट हाल्ट करने की इच्छा प्रकट की। वे कुछ आशिकाना मिजाज के थे। उनके लिए सब तरह का प्रबन्ध अवश्य हो जाना है। रूम न० २ में बैठे, गपशप कर ही रहे थे कि होटल के मैनेजर का फोन आया, "सब प्रबन्ध हो गया है, कहो तो भेज दूं।" मैंने वहां से टलने के लिए कहा तो, चीफ ने मना कर दिया। कमरे की बेल बजी तो चीफ साहब बोले, "यस कम इन।" मेरी निगाहें हठात् दरवाजे पर टिक गई। जो देखा, उस पर विश्वास ही नहीं हुआ। सामने थी बेला, सजी-संवरी गुड़िया-सी।

सब चलता है

आंगन के कोने में लगे नल के नीचे चिनकी बड़ी तन्मयता से अपने पैरों को धो रही थी। पास ही पड़ी पत्थर की खुरदरी पट्टी पर वह बार-बार अपनी एड़िया रगड़ती और फिर पानी डालकर बड़े ध्यान से देखती। ओह, कितना अन्तर आ गया है, इन गुलाबी एड़ियों में! कुछ शुष्क-सी, मुरझायी-सी। कहां गया वह गुलाबीपन? सोच में पड़ गई। सहसा उसे किसी की याद ने धर दबोचा। कभी किसी ने बड़े प्यार से इन एड़ियों के गुलाबीपन को निहारकर, चूम लिया था। उसे ऐसा लग रहा था, मानो वह स्थान उन होंठों की गरमाई से अभी तक जल रहा हो।

चिनकी अपने अतीत को भुला देना चाहती थी, मगर मोनू के रहते वह सब असम्भव था। चाहे कितना ही प्रयत्न करे, वह अपने इस प्रयास में विफल हो जाती है। कभी नासमझी या अल्हड़पन में हुई भूल शूल की तरह हर वक्त खटकती रहती। हालांकि वह इतनी पढ़ी-लिखी न थी, बस अपने मुहल्ले के स्कूल मे सिर्फ दो जमात पढी थी, फिर भी वह अब तक काफी समझदार हो गई थी। शायद काफी अरसा एक बड़े अफसर के सम्पर्क मे रहने से ऐसा हुआ हो। जो भी हो, उसे कोई यह भी नहीं कह सकता था, कि यह किसी परि कन्या है। एक तो वह सुन्दर थी, उस पर सलोके घर को ढंग से रखना आदि सब वह मेम सौभाग्य से उसे वर भी पढ़ा-लिखा बाबू मि बाबू ही तो है। अच्छा वेतन मिलता है। सुविधा है। अनजाना आदमी उन्हें दे

सकता था कि वह आदिवासी परिवार है। उस पर मोनू ! ओह, उसने तो ठीक राजकुमार की-सी शक्ल-सूरत पाई है। पाये भी क्यों न! वह किसी राजकुमार से कम थोड़े ही है ! आखिर है किसका बेटा ? वह फिर बेचैन हो उठी। किशन फूला नही समाता मोनू को देखकर। 'अगर उसे मालूम हो जाए कि मोनू उनका नही, वरन् मि० गिल का···' एक भय मिश्रित चीख उसके मुंह से निकल गई।

अपना होते हुए भी मोनू उसे बेगाना-सा लगता है, बेगाना, बिल्कुल बेगाना। वह चाहकर भी अपने पुत्र को इतना प्यार क्यों नहीं दे पाती है? एक भय-सा कलेजे के इर्द-गिर्द छाया रहता है। एक दिन किशन ने मोनू को देखकर कहा था, "देखा चिनकी, हमारा बेटा कैसा सुन्दर है! बड़े-बड़े अफसरों के बेटे इसके आगे पानी भरेंगे। देखना मैं इसे बहुत बड़ा अफसर बनाऊंगा। लोग भी क्या याद रखेंगे एक मामूली बाबू का बेटा···"

"नहीं, चुप हो जाओ।" चिनकी घबरा गई थी। वह हैरान-सा उसे क्षण-भर ताकता रहा। फिर बोला, "क्या बात है, तुम्हें क्या हो गया?"

"कुछ नहीं, तुम ऐसी बातें न किया करो।"

"क्यों चिनकी, क्या बात है? क्या मोनू मेरा बेटा···"

"नहीं-नहीं, मैं तो यूं ही डर गई थी। कहीं मेरे लाल को नजर न लग जाए।" और उसने झट से पास खेलते हुए शिशु को अपने नजदीक बैठा लिया।

"वाह भई, वाह!! यह भी खूब रही।" और हसता हुआ किशन वहां से उठ खड़ा हुआ।

एक शाम किशन जब दफ्तर से लौटा तो उसके हाथ में कुछ पैकेट थे। चिनकी को उसके अन्दर रखे सामान को देखने की लालसा जागी। तुरन्त बोल पड़ी, "आज यह सब क्या लाए हो?"

"देख लो।" और किशन ने सारे पैकेट पास ही रखी टेबल पर खोलकर रख दिए। कीमती साड़ी, बेबी सूट व नए-नए खिलौने देखकर चिनकी असमंजस मे पड़ गई। आश्चर्य से उसका मुंह खुला का खुला रह

गया। वह सोच रही थी, ऐसा सामान उसने पहले भी कहीं देखा है, पर कहां, यह याद नहीं आ रहा था। हां, गिल साहब के घर, ठीक ऐसे ही तो कपड़े व खिलौने होते थे। गिल की छवि फिर उसके मस्तिष्क पर छाने लगी। पर स्थिति की नाजुकता को समझते हुए उसने अपने-आप को संयत कर लिया।

"अरे चिनकी, ऐसे क्या बैठ गईं। क्यूं यह सब अच्छा नहीं लगा क्या ?"

"नहीं, नहीं, यह तो बड़ी प्यारी चीज है। कहां से लाए हो ?"

"वो गिल साहब हैं न, अरे वही, जिनकी मेहरबानी से हमारे अंधेरे घर में उजाला हो गया।"

"चलो, हटो जी, आपको तो हमेशा ही मजाक सूझा करता है। साफ-साफ कहो न !"

"सच कहता हूं। आज गिल साहब आए थे। कहते थे कि यह सब सामान तुम्हारे बापू ने तुम्हारे मोनू के लिए भिजवाया है। और कह रहे थे, मेरा स्थानान्तरण यहीं इसी शहर में हो गया है। कभी चिनकी और मोनू को लेकर आना।"

चिनकी की हालत अन्दर ही अन्दर ऐसी हो गई कि काटो तो खून नहीं। यह तो अच्छा हुआ किशन ने ध्यान ही नहीं दिया, बल्कि किसी काम से बाहर चल दिया।

किशन के जाते ही चिनकी ने घर का दरवाजा अन्दर से चिटकनी लगाकर बन्द कर दिया और फूट-फूटकर रोने लगी। ओह, वह यहां क्या करने आया है ? क्या मेरी बसी-बसाई गृहस्थी में विष के बीज बोने आया है ? नहीं, उसे नहीं आना चाहिए था। उस वक्त मैं नादान थी, धोखा खा गई। अब मैं उसको पास न फटकने दूंगी। उसने समझ क्या रखा है ? वह जानती है कि बापू का तो नाम है, यह सामान तो वह स्वयं लाया है। सबको रिझाने के लिए। क्या वह इन चीजों से अप्रत्यक्ष रूप से अपने नाजायज पुत्र का मनोरंजन करना चाहता है ? अगर किशन को पता चल गया तो वह मुझसे कितनी नफरत करने लगेगा। हे भगवान, अब क्या करूं ? वह लेटी रही, सुबकती रही। अतीत के

जाल फिर उसके चारों ओर अपना घेरा मजबूत करने लगे। ओह, याद आया, एक दिन बापू ने आकर कहा था, "ओ चिनकी की अम्मा ! वह नया अफसर आया है न हमारे कालेज में उसकी एक नन्ही-सी बच्ची है। उसको रखने के लिए चिनकी को भेज देना। बेचारे बड़ी मुश्किल मे है। बच्ची को रखने के लिए कोई मिलती ही नही।'

"क्यूं भई, उसकी मा क्यू न रखे है ?"

"अरी वो भी बड़ी अफसर है। लड़कियों के कालेज मे छोरी भेजते तेरे क्या नखरे आवे ? कपडा-रोटी देंगे और फिर ऊपर से दो बीसी नगद नारायण।"

"पण···हम तो···।"

"वह सब तो मैं उनसे कह बैठा। उन्हे कोई आपत्ति नहीं। वह तो अपनों की कदर जाने, जात-पात नहीं माने, देखियो तेरी चिनकी खा-पी के मोटी हो जाएगी, हो···।"

और फिर उसी दिन से चिनकी रात-दिन वहीं रहने लगी। एक छोटी-सी कोठरी, जो बाथरूम से सटकर थी, चिनकी के लिए दे दी। मेम साहब सुबह होते ही कालेज चली जाती और फिर शाम को लौटती। कभी कभी जल्दी भी, पर ऐसा बहुत कम होता था।

चिनकी बड़े कौतूहल से उनका पहनावा, मेकअप, खाना-पीना सब देखती और धीरे-धीरे सब चीजों का आनन्द लेने लगी।

एक दिन घर पर कोई न था। चिनकी के मन में प्रबल इच्छा जागी कि मैं भी फव्वारे के नीचे खड़ी होकर सुगन्धित साबुनो से नहाऊं। इससे बढ़िया मौका कब मिलने वाला था। उसने फटाफट सारे कपड़े खोल डाले और फव्वारे के नीचे नहाने लगी। वह इतनी मस्त हो गई कि उसे इतना भी ध्यान न रहा कि बाहर का दरवाजा खुला छूट गया। नहाने के उपरान्त उसने मुलायम तौलिये से अपना शरीर मेमसाहब की तरह पोंछा और लगी उसे पाउडर से तर करने। बडी मस्ती से शीशे के सम्मुख खड़ी वह अपने-आप को निहार रही थी। उसे अपना शरीर मेमसाहब से सुन्दर और सुगठित लगा। स्वयं अपने-आप को देखकर शर्म के मारे मरी जा रही थी कि अचानक उसकी निगाह बाहर खुलने

वाली खिड़की पर पड़ी जो इस वक्त खुली थी। उसमें से दो दह-कती हुई आखें उसे घूर रही थी। वह सहम गई और तुरन्त कपड़े पहनकर बाहर आई, तो उसकी निगाहें धरती में गड़ी जा रही थी। वह अपने-आप को एक अपराधिनी-सी महसूस करने लगी। अचानक उसकी रुलाई फूट पड़ी। गिल साहब सिसकती चिनकी के करीब आए। उसकी घबराहट देखकर सांत्वना देने लगे। उनके सख्त हाथ धीरे-धीरे चिनकी की पीठ पर रेंगने लगे।

"कोई बात नही। नहाना-धोना कोई बुरी बात नही। देखो तो सही, तुम नहाने के बाद कैसी सुन्दर लग रही हो।" झट से उन्होने चिनकी को घसीटकर आदमकद आईने के सम्मुख खड़ा कर दिया। वह अपनी ही आकृति पर मोहित हो गई। पास ही खड़े गिल साहब की आकृति दिखाई दी। उसे भला लगा। "देखो चिनकी, तुम कितनी हसीन हो, मेमसाहब से भी अधिक। तुम्हें तो रानी होना चाहिए। भगवान ने गलती से तुम्हे गोमू के घर भेज दिया।" चिनकी का चेहरा लाल हो गया।

गिल साहब मंजे खिलाड़ी थे। उन्होंने धीरे-धीरे अपना कांटा फेंकना शुरू किया। अन्त मे बात बढ़ गई, पानी सिर से ऊपर निकलने लगा। और वह सब होने लगा जिसकी कल्पना भी न की जा सकती थी।

अब चिनकी पर नशा-सा सवार रहने लगा। नित नई पोशाकों में लिपटी चिनकी किसी अप्सरा से कम न लगती थी। दुपहरी बड़ी मस्ती से कटती। गिल साहब कई-कई घण्टे कालेज से गायब रहने लगे।

मेमसाहब को न मालूम कैसे शक हो आया। एक दिन चुपके से वे कालेज से जल्दी घर लौट आई और मौके पर धर दबोचा। बस, फिर क्या था। भारी हंगामा खड़ा हो गया। गिल साहब की हालत ऐसी कि काटो तो खून नहीं। कुछ बोलते न बना।

चिनकी की नौकरी से छुट्टी कर दी गई। पर इतने से काम न चल सका। मालूम हुआ कि चिनकी उनके बच्चे की मां बनने वाली है। गिल साहब के तोते हिरन हो गए। करे तो क्या करे? बहुत सोच-

विचारकर गोमू को अपने कमरे में बुलाया, समझाया और तुरन्त ही भोले-भाले किशन को बलिवेदी पर चढ़ा ही दिया।

भोला-भाला किशन पास ही के किसी आफिस में तार बाबू था। नेक चाल-चलन का बांका जवान। किशन को चिनकी की खूबसूरती भा गई। उसने तुरन्त स्वीकृति दे दी। उसे क्या पता था कि जिसे वह खरा सोना समझकर ले जा रहा है, वह किसी बिगड़े हुए ऐयाश अफसर की जूठन है, और उसकी कोख में उसी अफसर का खून पल रहा है।

उसके बाद सुनने में आया था कि गिल को सरकार ने अमेरिका भेज दिया है और उसकी पत्नी भी शहर छोड़कर दूसरी जगह चली गई है।

पहले तो चिनकी को बहुत बुरा लगा। किशन चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, गिल के सामने हमेशा तुच्छ ही दिखाई दिया। चिनकी का मन उसमें रमता ही न था। धीरे-धीरे चिनकी को अक्ल आई और उसने महसूस किया कि गिल मात्र एक ऐयाश व्यक्ति था, जिसने उसकी जिन्दगी से खिलवाड़ किया था। उसके मन में गिल के प्रति नफरत का बीजारोपण हुआ तो किशन के प्रति स्नेह का।

वह चाहती थी कि गिल के पाप को, जो उसकी कोख मे पल रहा है, समाप्त कर दे। पर यह असम्भव था। किशन समझता था, चिनकी की कोख में उसी का बच्चा पल रहा है। वह ऐसा कब होने देता!

मोनू हुआ तो वह फूला न समाया। चिनकी ने मोनू को देखकर एक ओर मुंह फेर लिया। हू-ब-हू गिल का चेहरा। उसकी आंखो से दो गर्म मोती लुढ़क पड़े। किशन के पूछने पर उसने टाल दिया था। ये तो खुशी के आंसू हैं।

आज किशन गिल द्वारा दिए गए उपहार लाया है। उसके सीने में दबी चिनगारी ने शोलों का रूप धारण कर लिया है। ओह, वह क्या करे? अगर किशन को पता चल गया तो क्या होगा? तब अवश्य ही एक विस्फोट होगा, एक ऐसा विस्फोट कि जिसमें यह नन्हा-सा परिवार नष्ट हो जाएगा।

एक दिन किशन ने आफिस से आते ही कहा, "चिनकी, चलो तैयार हो जाओ, गिल साहब के यहां पार्टी है। उनकी बेटी का जन्म-

दिन हैं। हम सबको विशेष निमन्त्रण दिया है।"

सुनते ही उसे एक धक्का-सा लगा। वह गिल से परेशान हो उठी। वह गिल से मिलना नहीं चाहती थी। पर किशन का क्या करे? वह तो उसका पूरा भगत है। तो क्या वह किशन को सारी स्थिति से अवगत करा दे? और कहीं इसका असर उल्टा हुआ तो? अपने हाथों से ही अपनी बगिया न उजड़ जाए? खैर, बता देने में ही फायदा है। यूं तिल-तिल जलने से तो अच्छा है फैसला हो जाये। मन का बोझ उतर जायेगा। किशन को बुरा लगा तो मैया की शरण लूंगी। पर नहीं, अभी नहीं, कभी वक्त आने पर…।

गिल के यहां पार्टियों का तांता लगा रहता। हर बार किशन की जिद्द रखनी पड़ती। न चाहते हुए भी गिल से मुलाकातें। कई बार गिल एकान्त पाकर अपने बेटे की बात बोलता।

चिनकी ने फैसला कर लिया कि वह किशन को सब बता देगी। कुछ नहीं छुपाएगी।

किशन तकिये के सहारे लेटा कुछ सोच रहा था। हाथ में अधजली सिगरेट अपना धुआं बराबर वातावरण को समर्पित कर रही थी।

"किशन, गिल अच्छा आदमी नहीं है।"

"क्यों, क्या हुआ? वह तो तुम्हारे बापू का परम…?"

"नहीं-नहीं, किशन, अपने कारनामों पर पर्दा डालने के लिए उसने बापू से दोस्ती की है।"

"तुम्हें पता है मोनू…मोनू तुम्हारा बेटा नहीं है किशन।"

"मैं जानता हूं, मैंने सब पता लगा लिया है।'

"तो फिर, तुम यह सब बरदाश्त कैसे…?"

"मुझे जहर पीने की आदत है।"

"उसकी नीयत अभी भी साफ नहीं है।"

"अरे, डार्लिंग डरने की बात नहीं, सब चलता है।"

"तो क्या तुम भी इस साजिश मे शामिल…?"

किशन हो-हो करके हंस दिया। चिनकी आंखें फाड़े देखती रही थी। एक भयंकर विस्फोट तो हुआ, मगर चिनकी के दिमाग के अन्दर, वह दोनों हाथों से सिर थामकर धम्म से बैठ गई।

फेरों का रिश्ता

अपने क्वार्टर का दरवाजा खोलकर जैसे ही जसमीत ने अन्दर कदम रखे, चर्च की घड़ी ने दो के घण्टे बजाए। वह चौक गई और झट से अपनी कलाई पर नजर डाली। ठीक दो बजा रही थी उसकी घड़ी। ओह, यह दिसम्बर की सर्दी और यह ड्यूटी। इन मरीजों को भी टाइम-बेटाइम जरूरत पड़ जाती है और एक हम हैं कि मशीन की तरह काम करते ही जाओ, मानो हाड़-मांस के नहीं बेजान फौलादी पुतले हों।

नर्स की जिन्दगी भी क्या जिन्दगी है! कभी चैन नहीं, अपना कोई अस्तित्व नहीं। न जाने किस वक्त कोई केस आ जाए और अपना सब काम छोड़कर दौड़ना पड़े।

जसमीत ऐसे ही विचारों मे खोए-खोए हीटर पर चाय का पानी रख रही थी कि 'टामी' के जोर-जोर से भौंकने की आवाज से चौक उठी। ख्याल आया कि वह अपने साथ आए व्यक्ति को तो भूल ही गई।

झट से कुछ गोलियां निकालकर एक पुड़िया बनाई। बाहर आकर उस व्यक्ति को थमाते हुए बोली, "देखिये, ये गोलियां हैं। दो गोलियां उन्हें गर्म पानी से अभी दे दीजियेगा, सुबह आकर मैं फिर देख लूंगी।" उसके चले जाने के बाद जसमीत ने दरवाजा बन्द कर लिया। चाय पी और रजाई में दुबक गई। चारों ओर भयंकर सन्नाटा छाया हुआ था। कभी-कभी बाहर बरामदे में बैठे टामी के भौंकने की आवाज वातावरण की भयानकता को और भी भयानक बना देती थी। सच में रात में कुत्तों का रह-रहकर भौंकना भी अकेले आदमी को कुछ डरा-सा देता है।

जसमीत प्रायः झुंझला-सी जाती थी अपने इस पेशे से। पर क्या

करे। मजबूरी में ही तो अपनाया था उसने यह धन्धा। ऐसी बात नहीं है कि वह हमेशा बेमन होकर ही अपना काम करती हो। कभी-कभी तो उसे बड़ा सकून मिलता था इस कार्य को करके, जबकि उसके प्रयत्नों से मौत और जिन्दगी के दोराहे पर जूझते व्यक्तियों को नई जिन्दगी मिलती थी। तब वह बड़ी खुश होती और अपने को धन्य मानती थी।

सुबह आंख खुली तो उसने महसूस किया कि रात की थकान अभी मिटी न थी। कुछ देर तक तो वह वैसे ही सुस्ती मे लेटी रही। इस सर्दी मे बिस्तर छोड़ने की इच्छा ही न होती थी। सहसा उसे ऐसा लगा मानो कोई मेन गेट थपथपा रहा है, साथ ही टामी भी भौंक रहा है। तो लाचार हो उसे उठना ही पड़ा। अपने को शाल से अच्छी तरह लपेटते हुए वह बाहर आयी। टामी को पुचकारा व दरवाजा खोला। सामने इला खड़ी थी।

"हैलो जसमीत।"

"हैलो इला। कहो कैसे आना हुआ? खैर तो है? आओ-आओ, अन्दर आओ। यहा तो बड़ी सर्दी है।" उसने इला का हाथ पकड़ा और लगभग उसे घसीटती हुई-सी अपने कमरे मे ले आई।

"हां, कहो क्या बात है?"

"अरी बात क्या होगी, डाक्टर ने तुम्हें अभी बुलाया है। कोई अरजेन्ट केस है। रात से पड़ा है। अपेण्डिक्स है, सीरियस कण्डीशन है, शायद आपरेशन करना पड़े। रात-भर से साले ने परेशान कर रखा है। एक पल भी चैन नही लिया। मार्फिया का भी तो असर नही हुआ। मेरी नाइट थी सो खूब रगड़ाई हुई। जल्दी से तैयार हो जा। मेरी तो अब ड्यूटी आफ हो रही है। खड़े-खड़े साली कमर ही अकड़ गई।" और कहते-कहते इला वही लेट गई।

थोड़ी ही देर में जसमीत तैयार होकर आ गई व अपने साथ चाय और नाश्ता भी लेती आयी।

"लो, इला कुछ पेट पूजा कर ली जाए। फिर न मालूम कितना समय लग जायेगा। मैं तो रात भी कुछ न खा पाई।"

"क्यों? क्या भूख हड़ताल थी?"

"नहीं री, कल एक प्राइवेट डिलीवरी केस आ गया था सो चली गई। बड़ा परेशान होना पड़ा। लौटने पर रात के दो बज गए थे।"

"यह तो ठीक है, पर यह तो बता, लड़का था या लड़की?"

इला ने छेड़ा।

"लड़का हुआ है, पहला बच्चा था।"

"फिर क्या है, तेरी तो चांदी थी!"

इसी तरह बातचीत करती हुई दोनों क्वार्टर से बाहर निकल आईं। ताला लगाकर जसमीत ने हास्पिटल की राह ली और इला ने अपने घर की।

"गुड मार्निंग डाक्टर!" जसमीत ने मुस्कराते हुए कहा। "गुड मार्निंग।" डाक्टर ने जरा व्यस्त अन्दाज से कहा। "देखो सिस्टर, इस रोगी का ख्याल रखना। अपेण्डिक्स है। केस सीरियस है। आपरेशन करना पड़ेगा। तुम रेडी रहना। बाकी सबको हिदायत दे दी है। अभी मार्फिया दिया है। वह सो रहा है।" डाक्टर ने कहा।

"यस सर।"

"और हां, होश में आते ही हमको इत्तला कर देना।"

"यस सर।" जसमीत ने बड़ी चुस्ती से कहा।

डाक्टर के जाते ही उसने अपना ध्यान मरीज की ओर केन्द्रित किया। उसे देखते ही वह चौंक गयी। चेहरा उसे जाना-पहचाना-सा लगा। पर उसे एकाएक विश्वास नहीं हो रहा था। उसने सोचा कहीं उसकी आंखें धोखा तो नही खा रही हैं, पर नही, वह तो मनीष ही है। उसका सिर चकराने लगा, पर उसने हिम्मत से काम लिया। कुछ समय तक उसे निर्निमेष देखती रही। उसकी आखें छलछला आईं। उसने अपने-आप पर काबू पाना चाहा पर असफल रही। उठी, जल्दी से स्टाफ बाथरूम की ओर चल दी।

मनःस्थिति ठीक होने पर जब वह बाहर आयी तो सब लोग आ चुके थे। आपरेशन के लिए वे पूर्व तैयारी मे लग गये। उसे देखते ही राउण्ड पर आए डाक्टर बनर्जी ने पूछा, "सिस्टर, क्या बात है तुम्हारा चेहरा कुछ उड़ा-उड़ा-सा है?"

"कुछ नहीं सर, यूं ही थोड़ा सिर में दर्द है। अभी टेबलेट लिया है, अच्छा हो जाएगा।" उसने मुस्कराने का असफल प्रयास किया।

मरीज को आपरेशन थियेटर में ले जाया गया। तबीयत ठीक न होने के कारण जसमीत के स्थान पर आपरेशन में दूसरी नर्स की नियुक्ति कर दी गई। जसमीत स्टाफ रूम में टेबल पर सिर टिकाए बैठी रही। न वह अपने क्वार्टर पर ही गई और न अपनी ड्यूटी ही निभा सकी। वहीं बैठी-बैठी अपने अतीत में खो गई। उसकी आंखों के आगे उसका अतीत चलचित्र की भांति स्पष्ट दिखाई देने लगा।

हायर सेकेण्डरी की परीक्षा पास करते ही जसमीत की मां ने उसका विवाह करने की रट लगा दी। वह उसे और अधिक पढ़ाना न चाहती थी क्योंकि पिता तो थे नहीं। मां जैसे-तैसे इधर-उधर का काम-काज करके घर का गुजारा चला लेती थी। एक तरफ घर के खर्च की समस्या, दूसरी ओर जसमीत की खूबसूरती। अकेली बेवा औरत घबरायी थी। उसका कहना था कि बेटी समय पर अपने ठिकाने जा लगे तो अच्छा है। उसका रिश्ता मनीष से तय हो गया। यद्यपि वह गरीब थी फिर भी उसका सौन्दर्य देखकर मनीष के घरवालों ने यह रिश्ता मंजूर कर लिया था।

मनीष जैसा वर पाकर जसमीत फूली न समाई। उसने मनीष को देखा था। उसकी मां कहा करती थी, "अच्छा स्वस्थ व सुन्दर शरीर का हंसमुख, पढ़ा-लिखा वर भाग्य से ही मिलता है।" जसमीत अपने मन में तरह-तरह के सपने संजोये उस दिन का इंतजार करने लगी। एक तरफ पिया मिलन की खुशी तो दूसरी ओर मा से बिछुड़ने का गम। मिलन और विछोह की अनुभूतियां मन मे संजोये वह घंटों एकान्त में बैठी रहती।

विवाह से पांच दिन पूर्व उसकी सास तथा जेठानी अन्य रिश्तेदारों के साथ चुन्नी चढ़ाने आयी थी। कितना प्यार था उस मा के दिल मे! बार-बार अपनी पुत्रवधू का माथा चूम रही थी। नजर न लग जाये, सो नजर उतार रही थी। हां, जेठानी को, जो जरा काले रंग की थी, कम अच्छा लग रहा था।

शादी का दिन भी आया। खूब धूमधाम से तैयारियां हुई थीं। मां ने भी अपनी तरफ से कोई कसर न उठा रखी थी। पता नहीं कब इतना पैसा वह जोड पाई थी। देख-देखकर आश्चर्य होता था। खुशी के इस मौके पर सब झूम-झूमकर काम कर रहे थे। पर भगवान को न मालूम क्या मजूर था। मालूम हुआ कि मनीष की मां को हार्ट-अटैक हो गया है और उन्हें हास्पिटल में एडमिट करवा दिया गया है। सबके हौसले पस्त हो गये। सारा जोश ठण्डा हो गया। सभी काम छोड़कर उन्हे देखने भागे। "शादी नहीं टल सकती, मेरी बहू को घर ले जाओ।" मां के ये शब्द सुनकर मनीष को लाचार हो शादी उसी मुहूर्त में करनी पड़ी। न बैण्ड, न बाजा, चार आदमी गये शादी कर लाए। फेरों के तुरन्त बाद वह अपने पति के साथ सास का आशीर्वाद लेने गई पर यह क्या, सब खत्म हो गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी। घर में बैठी बड़ी-बूढ़ियों की खुसर-फुसर चलने लगी :

"बहू का पैर अच्छा नहीं पड़ा। बड़ी बहू आयी थी तो लाला जी के व्यापार मे बडा लाभ हुआ था। लाखों मे खेलने लगे थे। अरे भई, अपनी-अपनी किस्मत होती है। पारो ने तो हमसे पूछा तक नहीं। यह लौंडिया तो जन्म से ही ऐसी है। पैदा होते ही बाप न मर गया था इसका!"...जितने मुंह उतनी बातें।

जिसे फूलों-भरी सेज पर सज-संवरकर बैठना चाहिए था, वह रोती-सिसकती हुई लोगों की जली-कटी आवाजें सुनकर मरी जा रही थी। धीरे-धीरे समय बीतने लगा। शुरू-शुरू में उसने सोचा, मा के गम के मारे मनीष उससे बात नहीं करता। लेकिन जब सब मेहमान अपने-अपने घर चले गये तब भी मनीष ने न तो उससे बात की और न उसके कमरे में कभी गया तो उसका मन चीख उठा। वह रो उठी। एक दिन हिम्मत बांधकर मनीष के कमरे में वह स्वयं गई। अपना दोष पूछा तो मनीष ने साफ-साफ कह दिया कि, "मैं तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं रख सकता। हां, मैंने अग्नि को साक्षी कर तुमसे भावरें खाई हैं सो, यह घर तुम्हारा है, आराम से रहो।" सुनकर जसमीत के पैरों तले से धरती खिसकती-सी जान पड़ी। उसे चक्कर आ गया और वह वहीं सिर

थामकर बैठ गई। इसका प्रभाव भी विपरीत हुआ। मनीप यह कहते हुए बाहर निकल गया, "इस अभिनय का मुझ पर असर न होगा। तुम्हें यहां रहना है रहो वरना अपने घर जा सकती हो।"

वह घर छोड़कर कहीं चला गया। कुछ दिन तो जसमीत ने इंतजार किया, जब वह नही आया तो फिर उस घर में उसका और कौन था जिसके सहारे वह वहां टिकी रहती !

मां को मालूम हुआ तो गहरा दुःख पहुंचा। चन्द दिन की बीमारी के बाद उसने भी उसे दुनिया की ठोकरें खाने के लिए अकेले छोड़ दिया। बस उसी दिन से जीने के लिए उसने नर्सिंग होम का सहारा लिया और जिन्दगी की नाव को निरुद्देश्य अथाह सागर में छोड़ दिया। दस वर्ष हो गये, पर लगता है कल की-सी बात हो।

"अरे जसमीत, तुम यहां क्या कर रही हो भई ? घर नही गईं क्या ?" रूबी ने स्टाफ रूम से आते ही पूछा।

"बस यूं ही। कुछ भी तो नही।" और उसने अपनी आंखों से लुढ़कते आंसुओं को पोंछ डाला। रूबी परेशान-सी, हैरान-सी उसे देखती हुई वहां से चली गई।

तभी उसके कानों में एक आवाज आयी "डा० बनर्जी ने बहुत कोशिश की। पर बच नही सका बेचारा। पता नही कौन था। उसका कोई अपना था भी तो नही साथ में।"

वह फफक पड़ी और जल्दी-जल्दी अपने क्वार्टर की ओर चल दी। काफी देर तक सिसकती रही। जब मन कुछ हल्का हुआ तो उस ओर चल दी जिधर मनीप का मृतक शरीर रखा हुआ था। काफी देर तक उसे देखती रही और फिर उसके अन्तिम संस्कार का प्रबन्ध कराकर अपने 'फेरों के रिश्ते' को कायम रखते हुए अपना फर्ज अदा करके एक निश्चित दिशा की ओर चल दी।

और फरिश्ता मर गया

पता नहीं क्यों नुक्कड़ वाली पान की दुकान पर आज सन्नाटा-सा छाया हुआ था। वर्ना तो इस समय यहां लोगों का काफी जमघट रहता था। यही सोचता हुआ मैं साइकिल से उतर पड़ा। पूछने पर गंगू दुकान वाले ने उदासी-भरे लहजे में बताया, "बात का होत, बाबू। सब मालिक की मर्जी है। वे अमर बाबू रहे न, वही आपके पड़ोस के···।"

"हां···हां, क्या हुआ?" मैंने पूछा।

"बाबू, वे आज स्वर्ग सिधार गये।"

"क्या बोलते हो गंगू? मुझे तो विश्वास ही नहीं होता। सुबह तो मुझे मिले थे, वे पीपल के गट्टे पर कबूतरों को दाना चुगा रहे थे।"

"हां बाबू, यही तो नीली छतरी वाले का खेल है। कौनऊ न जाने कब का होय जाए। हारट फैल हो गिया बतावे।"

मैं हताश-सा भारी कदम रखता हुआ, घर की ओर चल दिया। सोच रहा था, वाह री कुदरत! कुदरत के इस खेल को कौन टाल सका है! चलते-चलते ही अमर बाबू के घर की ओर निगाह डाली। घर के अन्दर कुछ लोगों के बतियाने की आवाज आ रही थी। बाहर एकदम अंधेरा हो गया था। सुबह से भूखा होने के कारण मितली-सी आ रही थी, सो घर की ओर चल दिया।

घर में भी सब सुन्नसट्ट-सी लग रही थी। छोटा बबलू सो गया था। नवल मां के पास ही चुपचाप लेट रहा था। घर में घुसते ही पत्नी ने अमर बाबू के आफिस जाने से लेकर उनके मृत शरीर को गाड़ी में लाये जाने तक सब कुछ कह सुनाया।

मैं कुछ देर चुप बैठा रहा। मुझे खामोश देखकर पायल से न रहा

गया। चुप्पी को तोड़ते हुए बोली, "अमर बाबू के घर न जाओगे? सभी मर्द वहां इकट्ठे हो गये होंगे। आज तो रात-भर का चक्कर रहेगा। इतनी रात गये उनका संस्कार तो हो न पायेगा। बेचारा अकेला आदमी था। न कोई अपना सगा, न सम्बन्धी। ऐसे मे तो मुहल्ले वाले ही कुछ करेंगे न।"

मैं खामोश रहा। तबीयत में कुछ घबराहट-सी हो रही थी। जी मिचलाने लगा। फिर ख्याल आया, सुबह से कुछ भी तो पेट में नहीं गया, पहले कुछ खा लिया जाये।

काफी देर तक जब पत्नी ने कुछ खाने-पीने को नहीं पूछा तो खुद ही बोल पड़ा, "अरी, भागवान, सुबह से भूखा हूं। आज क्या फाका ही करना होगा?"

"हाय राम, मुहल्ले मे लाश पडी है और तुम खाने की बात कर रहे हो? ऐसे में भला कोई चूल्हा जलायेगा! तुमसे न रहा जाये तो कुछ नाश्ता आदि लेकर खा लो, मैं तो आज चूल्हा न जलाऊंगी।"

मैं अवाक्-सा पत्नी का मुंह देखता रहा। फिर सोचा, पुराने संस्कारों में पली कन्या भला अपने इरादे से डिग सकती है? उससे ऐसी आशा करना भी व्यर्थ है।

कमरे मे आया तो अंधेरा था। पत्नी रोशनी गुल करके सो रही थी। या फिर सोने का बहाना कर रही थी। कुछ देर तक अपनी खटिया पर बैठकर सोचने लगा, अमर बाबू के यहा जाऊं या नहीं। रात-भर का चक्कर है। फिर यह कड़ाके की सर्दी और नरम स्वास्थ्य। दिन-भर की थकान अलग तंग कर रही थी। एक बार जाने के बाद तो वहा से लौटना हो नहीं सकेगा। बाद में चला जाऊंगा। सोचकर मैं कुछ देर जूते खोलकर रजाई मे दुबक गया। तभी अमर बाबू का ख्याल आया, बेचारे का शरीर ठण्डे फर्श पर पड़ा होगा। सब खत्म, न कुछ हरकत, न अहसास…।

भले आदमी थे बेचारे। हमेशा दूसरों का भला करने वाले। अपना तो परिवार मे कोई नही था। कभी करीमन कुंजड़ी के यहां जाते, उसके बच्चों को देखने, तो उसके लिए हमेशा ही फल-दूध ले जाते। बेचारी

गरीब करीमन, महीनों से बीमार पड़े बच्चे के लिए यह सब जुटाते-जुटाते हार गई। अमर बाबू को मालूम हुआ। बस, फिर क्या था, जुट गये उसकी सेवा-टहल में।

करीमन बुढ़िया हाथ जोड़-जोड़कर खुदा से उनके लिए दुआएं मांगती। कहां गईं उसकी दुआएं? गरीबों पर दया करने वाला इंसान चलता बना, चुटकियों में! पर रहा तो अच्छा ही। न पीड़ा, न तकलीफ। चटपट चल दिये। वर्ना तो लोग महीनों बुरे-बुरे रोगों में सड़ते रहते हैं, तब कहीं जाकर प्राण निकलते हैं।

एक दिन की बात है। गिरजे का पादरी राह चलते फिसल गया था। अमर बाबू ने देखा तो नंगे पांव दौड़े चले आए। झट सहारा देकर उठाया, अस्पताल ले गये और उनकी सेवा में जुट गए। जब तक पादरी साहब ठीक न हो गये, अमर बाबू ने उनका साथ न छोड़ा। कुछ लोगों ने सोचा, शायद अमर बाबू क्रिश्चियन हैं। और पादरी साहब के रिलेटिव होंगे। पूछने पर पर हमेशा ही वे मुस्कराकर उत्तर देते, "इंसानियत का रिश्ता क्या किसी रिश्ते से कमजोर होता है?" उनके प्यार-भरे इस जवाब को सुनकर सब निरुत्तर हो जाते थे।

अमर बाबू ने अपना सम्पूर्ण जीवन जनसेवा में लगा दिया था। कभी वे गिरजे मे देखे जाते, तो कभी मस्जिद में। कभी मन्दिर में, तो कभी पीरों के मजारों पर। उन्हें समझना बड़ा कठिन हो गया था।

मुझे आज भी वह दिन याद हो आता है, जब उन्हें तेज-तेज कदमों से जाते हुए देख, मैंने कहा था, "अमर बाबू, जल्दी में हो क्या? क्या किसी विशेष काम से जा रहे हैं?"

वे तुरन्त बोल पड़े थे, "हां भई, वह बुढ़िया थी न। अरे वही जो अगले चौराहे पर बैठी रहती थी।"

"अच्छा, वही क्या, जो भीख मांगा करती थी, अन्धी थी शायद।"

"हां-हां, वही। सुना है मर गई।"

"चलो अच्छा हुआ, बेचारी के दुःख का अन्त हो गया।" मैंने सहसा कह दिया था।

"वह तो ठीक है, पर उसका अपना कहने को कोई नहीं है। मैं

वही जा रहा हूं। उसका अन्तिम संस्कार करना है न।"

मैं उन्हें घूरता ही रहा था और वे चल दिये। वे हमेशा भागते ही दिखाई देते थे। हमेशा प्रसन्नचित्त तथा परोपकार में लगे हुए। उनके कामों का अन्त न था। उनका सुबह और शाम का समय बंधा हुआ था बेसहारा लोगों के लिए। दिन-भर वे कमाते थे। काफी अच्छी तनख्वाह थी। पर सब दूसरों के लिए। वे कहा करते थे, "सब कोई अपने भाग्य का खाता है। हम किसी का क्या कर सकते हैं?"

एक बार की बात है। महीने की अन्तिम तारीख थी और नवल बीमार हो गया। डाक्टर के लिए फीस जुटाना मेरे बस की बात न थी। इस महंगाई के जमाने मे भला मुझ जैसा मामूली क्लर्क कर भी क्या सकता था! चार-चार खाने वाले और उस पर यह महगाई। घबराकर अमर बाबू के यहां दौड़ा। सोचा, वहीं कुछ मिल सकेगा, क्योंकि उनकी तनख्वाह अच्छी थी और खर्च करने वाला कोई नहीं। मालम होते ही वे दौड़े चले आए। बच्चे को देखा और देखते ही देखते डाक्टर और दवा दोनों का प्रबन्ध हो गया। मैं और मेरी पत्नी दोनों ने उनका बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया। बातों ही बातों में एक दिन मैंने कहा था, "अमर जी, आप अपनी गृहस्थी क्यों नहीं बसा लेते? यू अकेले कहां तक रहेंगे?"

वे हंसकर बोले थे, "अरे, अकेला कहां हूं भाई। आप सब लोग जो हैं; सब अपने ही तो हैं।" और उन्होंने अपनापन तथा प्यार-भरी आंखों से कुछ इस तरह से देखा कि मैं पूरा का पूरा भीग गया।

उनकी याद इतनी अधिक सताने लगी थी कि मेरे लिए लेटे रहना असम्भव हो गया। मेरा मन मुझे धिक्कारने लगा। मुझे जरा-सी असुविधा से डरकर यहीं बैठे रहना शोभा नहीं देता था। मैंने एक ही झटके से रजाई को दूर फेंका और उठ खड़ा हुआ।

कमरे मे चारों ओर नजर दौड़ाई, बच्चे सो रहे थे। पत्नी के चेहरे को देखकर लगा, वह रोते-रोते सो गई है।

दबे पांव घर से निकलकर बाहर आया और घर का दरवाजा बाहर से ही बन्द करके अमर बाबू के घर की ओर चल दिया।

घुप्प अंधेरे मे आज डर-सा महसूस हो रहा था। तेजी से चलने लगा पर एक-दो फर्लांग का रास्ता भी तय करना मुश्किल हो रहा था। मुझे लगा जैसे अमर बाबू स्वयं मेरे पीछे-पीछे चले आ रहे हैं। मैंने भागना आरम्भ कर दिया। अमर बाबू के घर पहुंचते-पहुंचते मैं पसीने से तर-बतर हो चुका था।

ड्राइंग रूम मे लोग बैठे थे, अपने-अपने कम्बल ओढ़े। गर्मजोशी से बातचीत हो रही थी। मेरी सबके सामने आने की हिम्मत नही हुई। धीरे से दरवाजे के अन्दर घुसा और वही कोने में बैठ गया।

थोडी ही देर मे पसीने से तर कपड़े रंग लाने लगे। भीगे हुए कपड़ों से जल्दी ही सर्दी महसूस होने लगी। मुझे अपनी मूर्खता पर गुस्सा आता। कम से कम सर्दी का ध्यान रखकर एक कम्बल तो उठा ही लाना चाहिए था। पर अब क्या हो सकता था? घुटनों मे गर्दन दबाये, सिर झुकाये सिकुड़कर बैठा रहा।

अमर बाबू का शव जमीन पर चारों ओर सफेद चादर से ढका हुआ पडा था। लोगों में चर्चा हो रही थी। बात यह थी कि अन्तिम संस्कार की तैयारी करवाने के लिए जब पण्डे को बुलाया गया तो उसने अमर बाबू की जाति और धर्म के बारे में प्रश्न पूछे। उसके उन प्रश्नों का उत्तर देने वाला अमर, इस दुनिया से कूच कर गया था। पण्डे ने यह कह-कर इंकार कर दिया कि जिसकी जाति और धर्म का पता-ठिकाना नहीं, उसका संस्कार किस विधि से करवाया जाये? किसी भी मरघट वाले दूसरी जाति वाले व्यक्ति का संस्कार उस स्थान पर नही करने देते।

सभी लोग एक-दूसरे से अमर बाबू के बारे में खोज-बीन कर रहे थे। पर सब बेकार था। अमर बाबू ने कभी अपने बारे में किसी को नही बताया था। कभी अगर किसी ने उनकी जाति के बारे में पूछने की कोशिश की भी तो उन्होंने हंसकर टाल दिया और कहा, "मेरा नाम अमर है। मैं जात-पांत मे विश्वास नही करता। इसलिए नाम के साथ जाति लगाना कोई जरूरी नहीं। मैं इतना जानता हूं कि मैं एक इसान हूं और सब इंसानों की जाति एक ही होती है। सबका आदि और अन्त एक-सा है। फिर भला यह अलग-अलग बिल्ले लगाये फिरना

क्या आवश्यक है ? रही धर्म की बात, सो सभी धर्मों में अच्छाई भी है और बुराइयां भी। मैं हमेशा अच्छाई खोजने का कायल हूं अतः सभी धर्म स्वीकार है।"

कुछ दिन तो लोग-बाग पीछे पड़े रहे पर उनके इतने अच्छे उत्तर सुनकर सभी ने अपना ध्यान उनकी इस बात की ओर से हटा लिया था। वे वास्तव में सच्चे इंसान थे। मन्दिर, मस्जिद और गिरजे सभी उनको प्रिय थे। किसे पता था कि जो बात अपने जीते जी उन्होंने बड़ी सरलता से टाल दी थी, उनके मरने के बाद भी रंग लायेगी।

मैंने चारों ओर नजर दौड़ाई। सभी जातियों और धर्मों के लोग वहां मौजूद थे। एक तरफ गिरजे का पादरी बैठा अपनी प्रार्थना पढ़ रहा था, दूसरी ओर करीमन अपने बेटे के साथ बैठी आंसू बहा रही थी। पास ही शर्मा जी भी बैठे थे। मैंने अपनी निगाहें उन सब चेहरों पर बारी-बारी से टिकाई और पाया कि बेबसी और लाचारी जाहिर करती हुई वे निगाहें ऊपर उठने का साहस नहीं जुटा पाती।

किसी में भी इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह किसी भी जाति के लोगों से उस पवित्र इंसान के अन्तिम संस्कार के लिए छूट हासिल कर सके। मेरी आंखों के सामने एकबारगी शहर के तमाम श्मशान घाट घूम गये।

अन्त में मेरी आंखें सफेद कपड़े में लिपटे अमर बाबू के शव पर टिक गईं। एक इंसान के शव पर मैं सोचने लगा। काश, यह शव एक बार फिर से हरकत कर उठे और जाति, धर्म व रूढ़ियों में जकड़े लोगों को अपनी जाति व समुदाय का परिचय दे डाले।

झुकी हुई छत

यह रफीक का तीसरा चक्कर था। "इस बार भी अगर रवि न मिला तो वह आंटी से कोई-न-कोई सुराग लेकर ही जायेगा।" इसी प्रकार के विचारों में डूबा हुआ रफीक जीना चढ़ गया।

पूछने पर वही टका-सा जवाब दिया, छोटे भाई नरेश ने, "हमें पता नहीं कहां गये हैं ?"

"मगर आंटी को तो पता होगा। कुछ बताकर नहीं गया क्या ? कहां है आंटी ?" इतने सारे प्रश्न एक साथ पूछने पर नरेश बड़े अजीब अंदाज से देखने लगा। सहसा भीतर से बड़ी कमजोर-सी आवाज आई, "कौन है भई ? रफीक है क्या ? भीतर आ जा बेटे।" अजीब-सी खुशी उसके चेहरे पर छा गई।

"नमस्ते आण्टी।'

"जीते रहो बेटे, आओ बैठो तो यहां।" और आंटी ने पास ही पड़ा मूढ़ा सरका दिया।

"आंटी कैसी हैं आप ? क्या तबीयत अच्छी नहीं ?"

"ठीक है बेटा, बस किसी तरह कट रही हैं, तुम तो जानते ही हो···?"

"आंटी, रवि कहां गया है ? मैं पहले भी दो बार···।"

"क्या पता बेटा। आजकल न जाने उसके दिमाग को क्या हो गया है। घर पर रहेगा तो किसी से बतियाता नहीं, गुमसुम पड़ा रहता है, या फिर सारा दिन निठल्लों की तरह बाहर···।"

"मां, भैया के लिए चाय-वाय।" बीच में ही रवि की बहन मृणाल ने आकर बात का रुख बदल दिया। शायद मां के मुंह से ऐसी ऊटपटांग

बातें सुनना उसे पसन्द नहीं आया होगा।

"अरे, नहीं-नहीं, तुम तकल्लुफ में मत पड़ो। मैं जरा जल्दी में हूं, फिर आऊंगा। अच्छा आंटी, अब चलूं?"

"ठीक है बेटा, जैसे तेरी इच्छा। जरा उस रवि को भी समझाना, थोड़ी मेहनत-मशक्कत करके कहीं चार पैसे कमाने का जुगाड़ बैठा ले, तो भाई-बहनों की जिन्दगी सवार लेगा, हमारा क्या, आज हैं कल नहीं।"

"सब ठीक हो जायेगा आंटी। अरे फिकर क्यों करती हो! रवि तो बड़ा अफसर बनेगा, जरा कोई अच्छी-सी जगह हाथ तो लगने दो।"

जैसे ही वह जीना उतरने लगा, मृणाल की मधुर आवाज ने उसे वहीं रोक दिया, "भाई साहब, मम्मी की बातों पर मत जाना। भैया को पता लगेगा तो भला क्या सोचेंगे। रात-दिन मेहनत करके बड़ी डिग्री पाई है और *अब नौकरी के लिए दर-दर भटकते फिर रहे हैं। मम्मी का* दिमाग न मालूम कैसा हो गया है, शायद परिस्थितियों ने सोचने-समझने की शक्ति···।" और मृणाल की आंखों से अश्रुओं की धार फूट पड़ी। गला रुंध गया। मृणाल के कंधे थपथपाकर उसने आश्वासन दिया और जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतर आया।

उसके दिमाग में एक ही बात थी, "रवि गया तो कहा?" फिर एक ख्याल बिजली की मानिंद उसके दिमाग मे कौंध गया और अनायास ही उसके कदम एक दिशा मे चल पड़े।

विचार सही निकला। रवि शहर के किनारे वाले कब्रिस्तान मे एक घने पेड़ की छाया मे, न मालूम किन विचारों में खोया हुआ बैठा था। चारों ओर छाई हुई शान्ति, पूर्ण उदासीनता, पत्ता भी खड़के तो आदमी चौंक उठे, मगर रवि न मालूम किस दुनिया मे खोया था कि उसके आने का एहसास ही न हुआ।

अपने कंधे पर हाथ लगते ही रवि चौंका नहीं, बल्कि धीमे से बोल पड़ा, "कौन, रफीक भाई, आ मेरे यार, तुझे भला इन वीरानों में आने की क्या जरूरत आन पड़ी?"

उसे बड़ा अजीब-सा लगा रवि का व्यवहार। तो क्या रवि को

मालूम था, कि वह यहां आयेगा। ओह ! हाँ, अब याद आया। एक बार रवि को इस ओर आते हुए देखकर उसने उसका पीछा किया था। कभी रवि ने बताया था, "देख यार कितनी शान्ति है यहां। सच, बड़ा सकून मिलता है, यहां आकर।" इन्हीं विचारों में खोये-खाये रफीक ने उसके एक धौल जमा दी, और बोल पड़ा, "उठ बे फिलास्फर। क्या इतने बड़े शहर में तुझे यही जगह मिली ? अबे, अभी तो जवान है। दुनिया की तमाम खुशियां तुम्हारी कदमबोसी को बेताब हैं।"

"तू भी यहीं बैठ जा यार, खड़ा-खड़ा क्या देख रहा है ?"

"हूं ! कितनी खौफनाक है यह जगह ! जिन्दगी का कहीं निशान नहीं। लाशें, और वह भी दफनाई हुई। चल यार, उठ। लोग कहते हैं, यहां भूतों का बसेरा होता है, कहीं कोई प्रेतात्मा···?"

"धत्-धत्, कैसी बात करता है ? मृतकों से क्या डरना, भाई जान ? ये बेजान भला क्या किसी का अहित करेंगे ? डर तो जिन्दा लोगों का होता है ! वे जो न कर दें, कम है।" उसे लगा आज रवि जल्दी से पीछा छोड़ने वाला नहीं है, सो वहीं बैठ गया, आल्थी-पाल्थी मारे।

कुछ देर के मौन ने दोनों को अपनी गिरफ्त में ले लिया। जब मौन अखरने लगा तो रवि से रहा न गया। बड़े आत्मीय स्वर में बोला, "रवि यार, एक बात तो बता, पढ़-लिखकर तू यूं नासमझों वाले रास्ते पर क्यों भटकने लगा है ? तूने कभी सोचा है, अपने मां-बाप के बारे में ? कभी सोचा है, उस जवान बहन के बारे में, जिसके हाथ बड़ी बेसब्री से सुहाग की मेहंदी लगने का इंतजार कर रहे हैं ? उन नन्हे-नन्हे भाई के बारे में कुछ सोचा है, जो घर के तनावपूर्ण असह्य वातावरण में अगली सुबह की इंतजार में, पलकों पर आंसुओं की बन्दनवार सजाये, नींद के आगोश में भूखे ही सो रहते हैं ?" रवि ने एक बार घूरकर उसे देखा और आंखें नीची कर ली। सहसा वह उससे लिपट पड़ा।

"हां, हां, इस सब के लिए तुम भी मुझे ही दोषी ठहराओ। बताओ, मेरा क्या दोष है ? क्या करूं मैं ? मैं··· मैं इस झुकी हुई छत के नीचे··· ओह ! और नहीं सह सकता !

"तुम्हें क्या पता रफीक, मैंने किसी तरह एक कोठरी में मां-बाप को

अभावों की चक्की में पिसते देखा। एक-एक करके पांच भाई-बहनों को आते देखा, वह कोठरी एक के बाद एक आने वाले नये प्राणियों के कारण छोटी पड़ती गई और हम लोग बचपन में ही बड़प्पन को अपनाते चले गये। मां-बाप की रोज-रोज की नोक-झोंक, लड़ाई-झगड़े देखे। कुछ बड़ा हुआ तो पढ़ाई के प्रति रुचि थी, उनके सपने बुलन्द थे। इन्हीं सपनों की दुनिया में खोकर वे अपने सुख संजोया करते थे। खर्चे बढ़ते गये, तनख्वाहें घटती गयी, बजट नित नये बनते-बिगड़ते रहे···।

"बच्चे होशियार थे, सो पापा को अपने सपने साकार होते दिखाई देने लगे। उसी एक छत के नीचे हम जवान हुए। मृणाल बी० ए० पास कर गई और मैं एम० ए०। मगर सब लोग पूरी तरह खुश हो पाते, इसके पहले एक कहर ढह पड़ा। पापा को मुअत्तिल कर दिया गया। वह सदमा सह नहीं पाये और बीमार हो गये और मा, वह तो बार-बार प्रसव पीड़ा को झेलते-झेलते वैसे ही निढाल हो गई थी।

"एक रात मां और पिताजी परस्पर बतिया रहे थे। मां अभावों का रोना एवं जवान बेटी की चिन्ता का राग अलाप रही थी, मगर पिताजी को जवान बेटे के सहारे की रोशनी नजर आ रही थी। पिताजी कह रहे थे, 'अब क्यों घबराती हो, रवि की मा, तुम्हारा बेटा तो अब चन्द रोज में अफसर बन जायेगा। फिर भला तुम्हें काहे की कमी रहेगी। राज करोगी राज! इस टपकते झोंपडे की जगह महल होगा! हा···।' मां उस रात एक नया सपना आखों में संजोकर सो रही थी और उस वक्त मुझे लगा था, मानो झुकी हुई छत ने अपना तमाम बोझ मेरे कन्धों पर डाल दिया हो।"

"वाह भाई, वाह! क्या खूब बात कही तुमने! भला इसमें नया क्या है? अमां यार, कुछ कर गुजरने की हिम्मत रखो, यूं बीरानों में···?

"तुम्हें क्या पता रफीक, इस दौरान कितने इण्टरव्यू, कितने कम्पीटीशन अटैण्ड किये, हर जगह मायूसी के सिवा क्या हाथ लगा मुझे? दुनिया के पास चेक भी हैं, जैक भी, पर मैं···मैं तो रोता हूं, भीतर से बाहर तक···। अब लगने लगा है, पिता के मन पर छाया हुआ अफसर धुंधला पड़ने लगा है। तभी से वे चिड़चिड़े-से हो गये हैं। छोटे भाई-

बहनों को उनका कोपभाजन बनना पड़ता है। डरता हूं, बहन के हाथों की लालिमा मेंहदी रचने से पहले ही फीकी न पड़ जाये। अब तो रफीक, वह भी थक-सी गई है, अन्दर-ही-अन्दर कुछ है, जो उसे खाये जा रहा है। जवान लड़की, तिस पर खूबसूरत! मा-बाप दोनों की आंखों में खटकने लगी है। तरह-तरह की पाबन्दियां और ऊपर से ढेर सारा काम। अभी कल ही मेरी कमीज में बटन लगाते हुए सुबक पड़ी थी, 'भैया, मैं बहुत थक चुकी हूं, मुझे आराम चाहिये।'

"अभी पूरी तरह बात भी न कह पाई थी कि मा की कड़कती आवाज सुनाई दी, 'कमबख्त न मालूम कहां जा मरी? एक घूंट था, सो भी जला दिया।' शायद चूल्हे पर चढ़ा दूध उफन गया था। छोटा बच्चा दूध के लिए चिल्ला रहा था। दोनों छोटे रोटी के लिए चिल्ल-पों मचा रहे थे। मृणाल तवे पर जल्दी-जल्दी रोटी सेंकने लगी थी। भीतर नरेश पापा से उलझ रहा था। उसे नया पेन, नये जूते-मोजे चाहिए, भैया की तरह। पापा ने एक भरपूर चांटा जड़ दिया था, नरेश के गाल पर— 'भैया की तरह, एक तो भैया ने तीर मार लिया, नया पेन लेकर?'

"मुझे लगा मानो मेरे कानों में किसी ने पिघला हुआ सीसा डाल दिया है। अपने को किसी प्रकार संयत कर कमरे से बाहर जाने लगा। जीना उतर रहा था, कि मृणाल की धीमी आवाज सुनाई दी, 'भैया, खाना।'

" 'अरे हां।' कहकर जैसे ही मैंने उसकी ओर देखा तो उसकी सुर्ख एवं सूजी हुई आंखें देखकर मन कराह उठा। उसके कालिख पुते हाथों से लंच बाक्स लेते हुए मन धिक्कारने लगा था। उसके सूने व असमय ही बूढ़े हो चले हाथों ने मानो कुछ उलाहना दिया था।"

रवि अपना अतीत बताते-बताते फिर रोने लगा था। दोनों मित्र न मालूम कितनी देर गले लगकर रोते रहे।

"अब बताओ यार, मैं क्या करूं? मुझे लगता है, सम्बन्धों की अपेक्षाओं से घिरा, मैं कभी उबर नहीं पाऊंगा। यही स्थिति रही तो सारा परिवार इसी झुकी हुई छत के तले दबकर खत्म हो जायेगा और मैं यह देख नहीं सकूंगा। रफीक, सच मैं यहां से कहीं दूर भाग जाना

चाहता हूं।"

"ऊंह, भगोड़े बनोगे ! बड़े कायर हो। लानत है तुम पर। घर से भाग जाना तो कोई विकल्प नहीं। संघर्ष ही जीवन है। दोस्त, भावुक मत बनो। कड़ी मेहनत और पक्के इरादे आदमी को फलक की बुलन्दियों तक पहुंचा देते हैं। चलो उठो, दिन छुपने को आया है। घर पर तुम्हारी मां व बहन चिन्ता से भारी परेशान हो रही होंगी। हां, रवि, एक खुशखबरी तुम्हारे लिए लेकर आया था। तुमने सुनाने का मौका ही न दिया।"

रवि आश्चर्यचकित निगाहों से उसे देखने लगा।

"अब्बा जान ने अपनी नई टाकीज में मैनेजर की पोस्ट पर तुम्हें पर्मानेण्टली नियुक्त कर लिया है।"

"सच !! तुम दोस्त नहीं फरिश्ते हो, रफीक। मैं तो शायद तुम्हारी दोस्ती के काबिल…?"

"बस, बस, हो गया, अब चलो कुछ मिठाई-विठाई हो जाये, सुबह से पेट में चूहे…।"

"नहीं रफीक, पहले घर चलेंगे। पता है, कल मैं इण्टरव्यू के लिए गया था, तो मां ने सवा रुपये के बताशे मंगा रखे थे, प्रसाद के लिए। शायद मां की विनती भगवान ने देर से सुनी होगी।"

"चलो, अच्छा, पहले मां के हाथ से प्रसाद लेंगे।

शादी से तलाक तक

वह शाम को आफिस से लौटा तो चाय का प्याला पकड़ाते हुए पत्नी ने कहा, "सुना है आपने? आपके वे सदीक साहब हैं न! अरे वही फिलासफर साहब!"

"हां, क्या हुआ उनको?"

"अरे होता क्या? आपको पता है, उन्होंने शादी कर ली है।"

"अच्छा! यह तो खुशी की बात है, पहली बीबी को मरे पांच साल हो गये, बेचारे बड़े गमगीन रहते थे।"

"हां, शादी तो की है, पर···।"

"पर क्या? कोई खास बात है?"

"कहते हैं, दुल्हन की और उनकी उम्र में जमीन-आसमान का अन्तर है।"

"अरे तो कौन-सी बात है। मर्द तो हमेशा औरत से उम्र में बड़ा होता है। अपनी ही बात ले लो, पूरे पांच साल···।"

"कुछ सुनोगे भी कि अपनी ही हांके जाओगे? पांच-दस की बात होती तो कोई अचरज की बात न थी, पर यहां तो बीसियों का अन्तर है।"

"क्या बकती हो? सदीक मियां एक पढ़े-लिखे, समझदार व्यक्ति हैं, वे भला ऐसी गलती···?"

"देख लीजिये, यकीन न हो तो। मिल आइये, सारा मामला समझ में आ जायेगा।"

राकेश के मन में उनसे मिलने की जिज्ञासा हुई, पर इस वक्त थका-मांदा शरीर कहीं जाने को तैयार न था। सोचा, कल जायेंगे, पर वह

आराम के लिहाज से वही पलंग पर लेट गया। उसके सामने रह-रहकर सदीक मियां का श्यामल-घिनौना चेहरा सामने आ रहा था। चेचक के दागों से भरपूर उनका चेहरा मधुमक्खी के खाली छत्ते जैसा दिखता था तिस पर बल्ब फ्यूज। मगर वे थे बड़े लायक और खुशमिजाज। अपनी इस जिन्दादिली के कारण वे दोस्तों में मशहूर थे। पांच साल पहले उनकी पत्नी का देहावसान प्रथम प्रसव के समय हो गया था। बेचारे बड़े दुखी होते थे। होते भी क्यों न, बसी-बसायी गृहस्थी जो चौपट हो गई थी।

समय बीतता गया। वक्त की मरहम ने उनके दिली जख्मों को भर दिया। यार-दोस्तों ने कई बार दुबारा विवाह करने की सलाह दी, पर वे टालते रहे। एक दिन राकेश भी उनके पास गया। बातचीत के दौरान दुबारा निकाह की बात छेड़ दी। वे उसके जिगरी दोस्तों मे से थे, इसलिए अपना दुखड़ा साफ-साफ शब्दों मे बयान कर दिया। बोले, "यार, तुम तो जानते ही हो कि जब एक बार के निकाह में ही काफी परेशानी उठानी पड़ी थी, दूसरी बार की तो बात ही छोड़ो। तुम तो जानते ही हो, बन्दा शक्ल-सूरत से भी बेकार है। भला ऐसी सूरत मे कौन राजी होगा और फिर चारो तरफ निगाह डाली है। अपनी बिरादरी मे कोई लड़की नजर नही आती। तुम जानते ही हो आई डोण्ट बिलीव इन इण्टरकास्ट मैरिज। सो भाई जान, मामला कुछ पेचीदा है।"

उसे सदीक मियां की बात बिल्कुल सही लगी। उस दिन के बाद से उसने सदीक मियां से विवाह के विषय मे चर्चा नही की। इस वक्त सदीक मियां के बारे में सोचते-सोचते वह सो गया कि कल तक मिलकर मालूम होगा कि माजरा क्या है?

अगले दिन जब वह सदीक मियां से मिलने गया तो मियां चपातियां सेंक रहे थे, और उनके साथ एक नौ-दस साल की गुड़िया-सी सजी-सजाई बालिका बैठी थी। उसे समझते देर न लगी कि यह गुड़िया ही सदीक मियां की दुल्हन होगी। उसे देखते ही सदीक मिया कुछ सकपका गए। खिसियाकर बोले, "आओ-आओ यार, कई दिनों बाद दिखाई दिये हो? कहां थे मियां इतने दिन?"

"अरे सदीक भाई, मैं तो यही था, पर सुना है तुमने···।"
"हां भाई, आपने बिलकुल सही सुना है, हमने निकाह कर लिया है, और तुम्हें ताज्जुब होगा यही है हमारी बेगम।"
सदीक मियां ने बात कुछ इस लहजे से की कि वह उनका मुंह ताकता रह गया।
"वल्लाह बहुत, खूब, मुबारक हो मिया।"
सदीक मियां ने आखिरी चपाती सेककर तवा उतार दिया और स्टोव पर दो प्याले चाय बनाने को पानी चढ़ा दिया। कमरे में एकदम खामोशी थी। थाली में खाना लगा, उन्होंने अपनी बेगम से मुखातिब होकर कहा, "लो शबाना, तुम खाना खा लो।"
उस नन्ही-सी बालिका ने शर्माते हुए मेरी ओर देखा और हंस दी। उसकी मासुम खूबसूरती कहर ढा रही थी, और वह सोचने लगा, अपनी उम्र आने पर यह कितनी खूबसूरत लगेगी! दो प्यालों मे चाय बनाकर सदीक मिया उसके पास आ बैठे और बोले, "अरे यार, क्या गुमसुम बैठे हो। अच्छा तुम्हें हैरानी हो रही होगी? अरे भाई पली-पलाई दुल्हन तो सभी लाते हैं, पर हम तो अपने हाथों मे परवरिश करेंगे इसकी। भई बुढ़ापे मे सहारा तो बनेगी।" और सदीक मियां अपने-आप गम्भीर हो गये। कमरे मे खामोशी छा गई। वह चुपचाप चाय सिप करने लगा।
थोड़ी देर बाद ही सदीक मियां ने खामोशी को तोड़ा, "यार, हुआ यह कि मैं छुट्टियों मे जब गांव गया तो मेरी खाला काफी बीमार थी, चूंकि उनका कोई लड़का नही था और शौहर का भी इन्तकाल हो गया था, मजबूरन मुझे उनके पास खिदमत के लिए चन्द रोज रुकना पड़ गया। मगर खालाजान इस दुनिया में और जियें शायद, यह खुदा को भी कबूल न था। वे अपनी एक मात्र पुत्री का हाथ मेरे हाथ में दे गईं।
"उस वक्त मैं भी बहुत परेशानी में पड़ गया, पर सोचकर कि इस वक्त बोलना ठीक नहीं, खामोश रहा। पर मेरी खामोशी को उन्होंने मंजूरी समझा, और इस दुनिया से कूच कर गईं। गांव में मेरी एक बुआ रहती हैं। जब मैंने उनसे अपनी परेशानी रखी तो कहने लगी, 'अरे नासमझ, लड़की तो बढ़ता धन है। बड़े होते क्या देर लगती है!'

पता नही इस लड़की में ऐसा क्या था कि दिन-दिन मुझे लगाव होने लगा और यह भी मुझसे काफी हिल-मिल गई। अच्छा मुहूर्त देखकर निकाह पढ़वा दिया गया। मुझे शर्म तो महसूस हुई कि दुनिया वाले क्या सोचेंगे, पर यह सोचकर कि इसे अभी बुआ के पास छोड़ आऊंगा, किसी को कानोंकान खबर न होगी, मैं आश्वस्त हो गया···।"

सदीक मियां बोलते-बोलते कुछ देर रुके और प्याले में बची ठंडी चाय एक ही घूंट मे पी गये।

"···हां तो जनाव, हुआ यूं कि कुछ महीने ही नहीं बीते थे कि बुआ भी इस दुनिया से कूच कर गई। सो बेगम साहिबा को झक मारकर हमें अपने साथ लाना पड़ा। पर एक बात है। बुआ ने चन्द महीनों मे इसे खूब समझा-बुझा दिया था।"

खाना खाकर वह उनके पास जा बैठी। कुछ देर और बातचीत हुई। राकेश उठा और आफिस की ओर चल दिया। अब करीब-करीब रोज ही वह सदीक मियां के घर जाता और काफी समय बातें होती। सदीक मियां के सामने एक समस्या थी। उसे किसके पास छोड़कर कालेज जाये। सो उसका हल भी ढूंढ़ लिया गया। सदीक मियां अपनी बेगम को राकेश की पत्नी के यहां छोड़ जाते। वह दिन-भर खेलती-कूदती और शाम को जैसे ही सदीक मियां आते झट भागकर उनसे चिपट जाती।

समय बीतता गया। एक दिन राकेश के स्थानान्तरण आदेश आ गये। वह अपने परिवार सहित स्थान छोड़कर चल दिया। सदीक मियां को बहुत बुरा लगा क्योंकि बेगम की समस्या फिर से आ खड़ी हुई थी। बेगम पहले से अब काफी समझदार होती जा रही थी।

सदीक मियां से जुदा हुए कई बरस बीत गये थे। उनकी बातें एक किस्सा बनकर रह गई थीं, जो यदा-कदा दोस्तों में सुना-सुनाकर मनोरंजन किया जाता था।

एक दिन राकेश अपने स्टडीरूम मे बैठा था कि नौकर ने आकर बताया, "एक दम्पति आपसे कुछ मशवरा करने के लिए मिलना चाहते हैं।" उन्हें अन्दर बुलाने को कह वह उनकी प्रतीक्षा करने लगा। चिक उठाकर एक मुस्लिम महिला एक पुरुष के साथ अन्दर आई और

आते ही उसने अपने बुर्के का पर्दा उलट दिया। वह उस हसीना को देखता ही रह गया। चेहरा कुछ जाना-पहचाना-सा लगा, पर याद नहीं आ रहा था। उसे यू घूरते देख उसे अच्छा न लगा। उसने औरत को फुसफुसाकर अपनी बात जल्दी से कह डालने को कहा। देखते-देखते उम अपनी गलती का अहसास हुआ। सम्भलकर बोला, "कहिए, आप लोगों ने कैसे कष्ट फरमाया ?'

"जी···जी, मैं अपने पति से तलाक लेना चाहती हूं।"

"आखिर क्यों ? आप लोगों मे ऐसा क्या झगड़ा चल रहा है ?"

"झगड़ा ! कोई एक बात हो तो कहूं। सच पूछो तो वह बूढा खूसट मुझे एक पल को भी पसन्द नहीं। उसे और अधिक सह पाना मेरे बस का नही।"

"बूढा खूसट ! माफ करना, मैं आपका मतलब समझा नही।"

"वकील साहब मेरे पति की उम्र मुझसे कई गुना अधिक है। आप ही बताइये इस उम्र मे मैं उसके साथ किस हद तक निभ सकती हूं ? और फिर बात यह है कि मैं इनसे शादी करना चाहती हू। हम दोनों एक-दूसरे को बेहद चाहते हैं। अगर आप मदद करें तो हमारी कोर्ट मैरिज···।"

"लेकिन यह काम इतना आसान नही जितना आप समझती हैं ? पहले आपको अपने पति से कानूनन तलाक लेना पड़ेगा, फिर जाकर कहीं···।"

"लेकिन इतना लम्बा समय तो···।"

"वैसे इसके अलावा कोई रास्ता नही है। हो सकता है, आप अपने पति को धोखा···:"

"धोखा ! धोखा मुझे दुनिया ने दिया। मा ने दिया है और उस खाविंद ने दिया है। क्या आप चाहते हैं कि उस वर्फीले किस्म के व्यक्ति के साथ रहकर जिन्दगी के सुनहरी वक्त को दीमक के हवाले कर दू ?"

"आप, मेरा मतलब, मैं···।"

"हां, हां, वकील साहब, मैं सब समझ गई। मेरे ख्याल मे आप हमारी कोई मदद न कर सकेंगे। ठीक है, हमे खुद ही कोई राह चुननी

पड़ेगी।" और वे लोग उठकर चले गये।

वह देख रहा था जजबात के सैलाब को, जो रोके से भी न रुक रहा था। उसे बार-बार यूं लग रहा था जैसे इस औरत से वह पहले भी मिला हो, पर कहां, यह अभी तक याद नहीं आ रहा था।

रात को जब वह अपने बिस्तर पर लेटा तो उसे अचानक सदीक मिया की याद आ गई। वह सोचने लगा, सदीक भाई और उनकी बेगम में भी तो काफी अन्तर था, कहीं वह भी···?

अगले दिन जब सुबह वह उठा, तो मेज पर रखा ताजा अखबार उठाकर पढ़ने लगा। पन्ना उलटते ही वह दग रह गया। बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था "पत्नी कई हजार रुपये लेकर चम्पत।" नीचे जो हुलिया पढ़ा तो हूबहू उस औरत से मिलता था, जो एक दिन पहले उससे मिलने आई थी। उसे ध्यान से पढ़ा और जब समाचार देने वाले का नाम पढ़ा तो एकदम पस्त हो गया। नाम सदीक मियां का था। उसे बड़ा अफसोस हुआ।

अगले दिन जब सदीक मिया से मिलने गया तो देखकर दग रह गया। उनका हाल बेहाल हो गया था। वे काफी बूढ़े दिखाई देने लगे थे। उनसे बातचीत के दौरान मालूम हुआ कि जब से वे रिटायर हुए थे, ट्यूशनों के जरिये कुछ कमा लेते थे। कुछ कालेज के नौजवान पढ़ने आते थे। उनमे से एक विद्यार्थी इत्तफाक था, उनका बड़ा मुहलगा और वह घर के सदस्य की तरह पेश आता था। उन्हें क्या पता था कि बेगम से इसकी साठ-गांठ है, और जब शुबहा हुआ तो काफी देर हो चुकी थी।

●●●

सुदर्शन राघव

पहले अध्यापन फिर साथ में गृहस्थी भी ! और फिर कहानी लेखन भी। अब अध्यापन से मुक्ति पा ली; गृहस्थी है और कलम है। जितना भी समय निकल पाता है उसमें उन क्षणों को पकड़ने की कोशिश में रहती हूं, जो अचेतन में कहीं विशिष्ट बन जाते हैं।

यह पहला कहानी संकलन है। अगले दो संकलन भी प्रकाशन क्रम में हैं। इधर पत्रिकाओं में भी कुछ कहानियां छप रही हैं।